# मैथिलों के अन्तःपुर का प्रथा-विचार

देवदत्त शास्त्री

यह पुस्तक

- धराशायी कौशाम्बी की मधुमयी वाणी है। कथा-स्वरों में मुखरित इतिहास का एक नया धरातल है।
- हर कहानी घायल कौशाम्बी के कसमसाते हुए वक्ष की कभी न मुरझाने वाली पुष्प-माला है।
- इसमें इतिहास की धड़कन है, अमर मधुरिमा का अभिवन्दन है, जो पाठकों के अधरों में बरबस स्पन्दन ला देता है।
- प्यार और पीड़ा की निर्झरिणी बनी हुई इसकी आँखों में उदयन और वासवदत्ता के शत-शत स्वप्न खेलते हुए मिलेंगे।
- सुधि के घेरे में घिरी हुई इसकी कहानियाँ पाठक के दिल में बिजली-सी कौंध जाती हैं, प्राणों के शोले धधक उठते हैं।
- कठोर काल द्वारा सरलता से छली गयी बावली कौशाम्बी के मिठास, तरलता, हास और उल्लास भरे संकेत पढ़ कर पाठक का मन पीपर के पात-की भाँति डोल उठता है।

ये कहानियाँ

- जिन्दगी की मुस्कराहट हैं।
- प्यास में तृप्ति जैसी प्यास हैं।
- प्यार के खेत में शबनम की फसल हैं।
- वासना की अन्धी तहों में छिपी हुई अनुभूतियों के सत्य हैं। और—
- जिन्दगी के थके हुए कारवाँ केलिए मंज़िले-मक़सूद हैं।

KNOW

# कौशाम्बी के अन्तःपुर का कला-विलास

देवदत्त शास्त्री
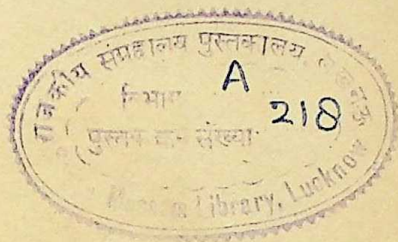
किताब महल, इलाहाबाद

प्रथम संस्करण, १९५४



अपने उदयन को

प्रकाशक—किताब महल, इलाहाबाद।
मुद्रक— यूनियन प्रेस, प्रयाग।

# सन्दर्भ

गाँव के ज्ञान-सून्य वातावरण में रहते हुए सत्ताइस वर्ष पूर्व कथा सरित्सागर में कौशाम्बी नगरी तथा कौशाम्बी नरेश महाराज उदयन और उनकी महारानी वासवदत्ता की कथाएँ पढ़ कर मुझे ऐसा लगा, मानों मेरे आस-पास ही कहीं कौशाम्बी है, उदयन और वासवदत्ता अब भी जीवित हैं। मैंने उन कथाओं को कई बार पढ़ा पर जी न भरा, जिज्ञासा और उत्सुकता भरी हुई थी। मुझे यह नहीं मालूम था, कि उदयन और वासवदत्ता हजारों वर्ष पहले हुए हैं, और कौशाम्बी हजारों वर्ष से ध्वस्त हुई भूगर्भ में विश्राम कर रही है। एक साल बाद मैं मिडिल का फाइनल इम्तहान देने इलाहाबाद आया। जीवन का यही प्रथम सुअवसर था। नगर, रेल, मोटर आदि नागरिक आडम्बरों को देखने का। इम्तहान हो गया, त्रिवेणी स्नान करने गया; धार्मिक परम्पराओं से सम्बद्ध कुल में उत्पन्न होने के कारण तीर्थराज प्रयाग में आकर शिर मुँड़ाना मैंने भी अपना कर्तव्य समझा। मैं नाई से शिर मुँड़वा रहा था, कि एक सन्यासी भी आकर वहाँ खड़े हो गए। मैं नाई को एक आना पैसा दे रहा था और वह मुझे देहाती समझ कर मुझसे दो आना माँग रहा था। कुल जमा मेरे पास दो आने ही थे। मैंने हिसाब लगाया था कि एक आना नाई को दूँगा, एक पैसा पंडा को एक पैसा का फूल गंगाजी में चढ़ाऊँगा, शेष दो पैसे में कुछ खाने के लिए ले लूँगा। लेकिन नाई ने मुझे खूब विधि से मूँड़ दिया, मेरी सारी पूँजी उसने छीन ली। उस समय मैं निराश और निरीह-सा बन गया था। मेरी लाचारी को देखकर उन संन्यासी के हृदय में भी कुछ सहानुभूति पैदा हुई। वे गेरुए कपड़े जरूर पहने थे, पर देखने में, बातचीत करने में और व्यवहार में बहुत

ही संभ्रान्त, शिक्षित और समृद्ध जान पड़े। अंग्रेजी पढ़े हुए थे, इसलिए उन्हें मैंने बहुत विद्वान् समझा था। मुझे मिठाई, पूड़ी खिला कर एक रुपया और दिया था, इसलिए उन्हें मैं धनवान समझता था, वस्तुतः वे क्या थे यह मैं नहीं कह सकता।

बातचीत के दौरान में उन्होंने मेरा गाँव घर पूछा, इलाहाबाद से पश्चिम यमुना के किनारे मेरे गाँव की स्थिति सुनकर उन्होंने कहा—कौशाम्बी से कितनी दूर है? मैंने कहा मुझे नहीं मालूम कि कौशाम्बी कहाँ है? उन्होंने कहा उसे कोसम कहते हैं। कोसम गाँव भी मैं नहीं जानता था। लेकिन यह विश्वास और उत्सुकता मन में जम गयी कि मैं कौशाम्बी के निकट ही रहता हूँ। घर आकर लोगों से 'कोसम' पूछा तो मालूम हुआ कि मेरे गाँव से ७ मील पूर्व है। तेरह-चौदह वर्ष की आयु की इस स्मृति को मैं अपने हृदय में उसी प्रकार जीवित बनाए और छिपाए रहा जैसे कौशाम्बी अपने हजारों वर्ष का इतिहास अंकस्थ किये हुए जमीन के अन्दर सोयी हुई है।

जिन्दगी की लम्बी राह पर मैं कुछ आगे बढ़ा, कुछ पढ़कर, कुछ सुनकर कौशाम्बी को देखने भी गया, और कई बार देखा। जब-जब कौशाम्बी के टीलों को देखने के लिए मैं वहाँ गया, तब-तब मुझे संस्कृत के नाटक, कथा और काव्य साहित्य में वर्णित कौशाम्बी का अतनुवर्णन सशरीर देखने को मिला। मुझे ऐसा लगता कि कौशाम्बी की धरती बोलती है, मुझसे बातें करती है, और मुझे बताती है, अपना विगत इतिहास और युग-युग के उतार-चढ़ाव। कौशाम्बी की कष्ट कथाएँ और कमनीय कथाएँ मैंने बहुत पढ़ीं, उन सब की कहानी मुझे वहाँ के हर कंकड़ पत्थर में लिखी हुई-सी जान पड़ती है। उदयन और वासवदत्ता की कमनीय कथाओं से मैं बहुत प्रभावित हुआ। कौशाम्बी मेरे गाँव के निकट है, शायद इसलिए उसके प्रति मुझे अधिक मोह है, या और कोई बात है—यह मैं अब नहीं समझ सका। पर कौशाम्बी और उसका

इतिहास—खासतौर से उसका कला-विलास मुझे गति देता है, प्रेरणा देता है, मुझे कुछ लिखने, सोचने और मनन करने के लिए बाध्य किया करता है। तीन वर्ष पहले जब इलाहाबाद विश्वविद्यालय की ओर से कौशाम्बी की खुदाई में कुछ ऐतिहासिक चिह्न मिले तो एक बार पुनः मेरा हृदय आन्दोलित हुआ, मन मचलने लगा। मैं सच कहता हूँ, मेरी लेखनी लिखने के लिए थिरकने लगी, और मैंने अवसर-अवसर पर जो कुछ लिखा उन्हीं निबन्धों का संग्रह यह पुस्तक है।

इस पुस्तक के सभी निबन्ध वर्णनात्मक हैं, लेकिन इनमें अतिरंजना या कल्पना का एक भी अंश मेरी ओर से नहीं जोड़ा गया है। इन निबन्धों को लिखते समय मेरी भावनाएँ सहज सुकुमार रही हैं। बड़ी, संवेदना और सहानुभूति से मैंने लिखा है। कौशाम्बी, उदयन, वासवदत्ता के जिन कला-विलासों का वर्णन या चित्रण मैंने किया है, वे एक प्रसंग के नहीं हैं, इन्हें मैंने संस्कृत के विभिन्न नाटकों, काव्यों और कथा आख्यायिका ग्रन्थों से चुन-चुनकर प्रसंगबद्ध किया है। बिखरे हुए मोती के समान कथा प्रसंगों को बीन-बीन कर मैंने इन्हें एक सूत्र में पिरोने का साध्य प्रयत्न किया है। इन वर्णनों के हर वर्ण और अर्थ में मेरे हृदय के तार-तार पिरोये हुए हैं। इनके प्रति मेरा सहज मोह है, लेकिन इस मोह के व्यामोह में पड़कर मैंने इतिहास और तथ्य की न तो उपेक्षा की है और न उनके साथ अन्याय ही होने दिया है। आत्मीयता स्थापित हो जाने पर ऐसा कार्य करना मैं आत्महत्या करना समझता हूँ। इसलिए आप इन्हें पढ़कर कौशाम्बी की बीती कहानी का तथ्य और इतिहास भली-भाँति समझ सकते हैं, कदाचित् आपको सन्देह और धोखा न होगा।

इन निबन्धों को लिखते हुए मैं पाठक और आलोचक भी बनकर इनका रसास्वादन और आलोचन करता रहा। पता नहीं क्यों ये निबन्ध, ये कहानियाँ मुझे अधिक प्रिय हैं, यही कारण है, कि मैं कौशाम्बी से

संबन्धित कथाओं और कलाओं के परिचय आगे लिखने के लिए भी तत्पर हूँ, कौशाम्बी के इतिहास, कला और साहित्य इन तीन विषयों पर तीन विवेचनात्मक ग्रन्थ लिखने का निश्चय मैंने किया है।

इन निबन्धों में से अधिकांश निबन्ध स्थानीय भारत और अमृत-पत्रिका के साप्ताहिक संस्करणों में प्रकाशित हो चुके हैं। उक्त पत्रों के सम्पादकों और उनके सहकारियों ने इन निबन्धों के प्रति बड़ी उत्सुकता और रुचि प्रकट की थी, जिससे मुझे इन्हें पुस्तकाकार प्रकाशित करने की प्रेरणा मिली है।

कौमुदी महोत्सव, मदन महोत्सव आदि ऋतु संबंधी उत्सवों के निबन्ध काव्य-लोक की गोष्ठियों में पढ़े गए हैं, और इतना ही नहीं काव्य-लोक ने इन उत्सवों को दो हजार वर्ष पहले की भाँति सर्वप्रथम मना कर ऐसे पर्व मनाने की भूली हुई परंपरा को पुनः प्रतिष्ठापित करने का श्रेय भी प्राप्त किया है।

लिखने से पूर्व इन कहानियों को मैं पहले अपने पुत्र उदयन को सुनाता था, फिर इन्हें लिपिबद्ध कर काव्य लोक की गोष्ठियों में सुनाता, इसके बाद समाचार पत्रों में प्रकाशनार्थ भेजता। इस प्रकार तीन सोपान पार कर ये निबन्ध अब पुस्तक रूप में होकर स्थायित्व प्राप्त कर रहे हैं। मुझे विश्वास है, कि पाठक और आलोचक मेरी ही भाँति संवेदना और ममता के भाव रखते हुए इन्हें पढ़ेंगे, इनकी आलोचना करेंगे और मुझे अपने बहुमूल्य सुझावों द्वारा प्रेरित और प्रोत्साहित करेंगे।

काव्यलोक,
प्रयाग।

**देवदत्त शास्त्री**

# संकेत

# उदयन-वासवदत्ता

महाभारत युद्ध के बाद पाण्डव-पुत्र अभिमन्यु के लड़के परीक्षित हस्तिनापुर के राजा हुए। नाग द्वारा उनकी मृत्यु हो जाने के बाद हस्तिनापुर पर दैवी विपत्तियों का प्रकोप इतना प्रबल हुआ कि गंगा की बाढ़ आ जाने से हस्तिनापुर डूब गया। परीक्षित के पुत्र जनमेजय हस्तिनापुर से राजधानी उठाकर कौशाम्बी ले आए। आर्यावर्त के मध्यवर्ती गंगा-यमुना के पवित्र मध्यभाग में स्थित कौशाम्बी श्रीराम के समय से ही अपना सांस्कृतिक और राजनैतिक महत्त्व रख रही थी। महाराज जनमेजय ने यहीं आकर अपने पिता की शत्रु-जाति से बदला लेने के लिए नाग यज्ञ किया था, भरतवंश का विस्तृत राज्य और सम्राट् पद का ह्रास जनमेजय से शुरू हुआ, उनके पुत्र शतानीक के समय और भी संकुचित हुआ। शतानीक के पुत्र सहस्रनीक के शासन-काल में भरत-साम्राज्य छिन्न-भिन्न होकर कई भागों में विभाजित हो गया। बहुत दिनों बाद पाण्डवों की सत्ताईसवीं पीढ़ी में उत्पन्न महाराज उदयन राज्याधिकारी हुए, उस समय पाण्डववंश के अधीन केवल वत्सदेश ही रह गया, जिसकी राजधानी कैशाम्बी थी।

दो हजार वर्ष पूर्व हमारे देश में अवन्ति, मगध, कोशल और वत्स ये चार बड़े राज्य भारतवर्ष के केन्द्र भाग में विख्यात थे। इनमें अवन्ति, कोशल और मगध में परस्पर बहुत ही प्रतिद्वन्द्विता थी, एक राजा का दूसरे राजा को आत्मसात् कर लेने की चेष्टा उस समय इन तीनों देशों में जागरूक थी। उज्जयिनी के प्रद्योत राजा ने अपनी समर वाहिनी इतनी विपुल बना ली थी, कि वह महती सेना के कारण महासेन और अत्यन्त पराक्रमी होने के कारण 'चण्ड' कहा जाने लगा था। उससे सभी

पड़ोसी राजा भय माना करते थे। अवन्ती के राज्य की सीमा बढ़ते-बढ़ते मथुरा तक आ गयी थी और अब उसे जरूरत थी मगध तक फैलने की, लेकिन कौशाम्बी मध्य में पड़ कर अड़चन बन रही थी। मगध, कोशल और अवन्ती इन तीन समृद्ध राज्यों के त्रिकोण का केन्द्र कौशाम्बी थी। तीनों देशों का यातायात और व्यापार का मार्ग भी यही रहा इसलिए सामरिक और आर्थिक दृष्टि से भी कौशाम्बी का महत्त्व भारतवर्ष के नगरों में सर्वोच्च समझा जाता था। कौशाम्बी राजधानी धर्म, समृद्धि से परिपूर्ण थी, किन्तु सबसे अधिक गौरव उसे इसलिए भी प्राप्त था, कि सबसे प्राचीन और पवित्र, परम तेजस्वी भरतवंश की यह राजधानी थी। देश भर के सभी राज्य कौशाम्बी की राजगद्दी के सामने अवनत हुआ करते थे, कौशाम्बी के राजवंश से विवाह और मैत्री स्थापित कर अपने को धन्य समझते थे।

पाण्डवों की सत्ताईसवीं पीढ़ी में उत्पन्न महाराज उदयन जितने वीर उतने ही रसिक और उससे अधिक सुन्दर और सुन्दरता से भी अधिक गुणी थे, इसलिए उनका सिक्का भारत के अन्य सङ्घराज्यों में जमा हुआ था। कुलीनता, वीरता और समृद्धि के कारण कोशल, मगध और अवंती के राजा उन्हें अपना-अपना मित्र और सम्बन्धी बनाने के लिए आकुल-व्याकुल रहा करते थे। उदयन की प्रजावत्सलता भी चरम-सीमा की रही। उनके रूप, यौवन, गुण और शासन की अनन्त कथाएँ उनके बाद सैकड़ों वर्ष तक प्रचलित और निर्मित होती रहीं। महाराज उदयन ऐसे वंश में उत्पन्न हुए थे, जिसके राजर्षियों की कीर्ति वेदों में भी गायी गयी है। फिर कौशाम्बी जैसी राजधानी पाकर उनकी पवित्रता, कुलीनता और वीरता में चार चाँद लग गए थे।

महाराज उदयन 'हस्तिकान्तशिल्प' में निपुण ही नहीं बल्कि अद्वितीय थे। उन्हें मृगया का बेहद शौक था। हस्तिकान्त मंत्र पढ़ कर जब वे

अपनी वीणा बजाया करते थे, तो जंगल के भयङ्कर से भयङ्कर और उन्मत्त से उन्मत्त हाथी उनके वशीभूत हो जाया करते थे। अवन्ती के राजा चण्डमहासेन प्रद्योत की पुत्री वासवदत्ता अनिंद्य सुन्दरी थी। अवंती-नरेश चाहते थे, कि वत्सनरेश महाराज जैसे रूप, गुण, यौवन, समृद्धि-सम्पन्न के साथ अपनी रूपवती, गुणवती नव-यौवना कन्या का विवाह कर जातीय गौरव और राजनीतिक लाभ एक साथ प्राप्त करें। लेकिन यह भी विश्वास नहीं तो आशंका अवश्य थी कि भरत कुल में उत्पन्न उदयन यह सम्बन्ध स्वीकार करेंगे भी ? अवंती नरेश ने सुन रखा था, कि महा-राज उदयन को वीणा बजा कर हाथी पकड़ने का व्यसन है। उन्हें एक उपाय यह सूझा कि काठ का एक हाथी बनवा कर उसे ऊपर से रँगा दिया और उस हाथी के अन्दर सशक्त योद्धाओं को बैठाकर उसे अवंती और कौशाम्बी की सीमा के जंगल में छुड़वा दिया। यंत्र चालित उस हाथी की विशेषताओं का समाचार उदयन ने अपने वनरक्षकों से सुना और तुरन्त वे उस हाथी को पकड़ने के लिए चल पड़े। हस्तिकान्त मंत्र पढ़ कर जब उन्होंने अपनी गजविमोहिनी वीणा बजाना शुरू किया तो वह कृत्रिम हाथी वीणा की ध्वनि सुन कर उनकी ओर न जाकर इधर-उधर भाग रहा था। महाराज उदयन ने भी उसका पीछा किया। सभी पार्श्व-चर इधर-उधर तितर-बितर हो गए, फिर भी महाराज उस हाथी के पीछे वीणा बजाते हुए भागते ही गए। दूर बहुत दूर जब अवंती की राज्य सीमा में वह मंत्र परिचालित हाथी पहुँच गया तो उसके अन्दर से सशस्त्र योद्धा कूद पड़े और महाराज उदयन को गिरफ्तार कर उज्जयिनी ले गए।

महाराज प्रद्योत ने उन्हें वन्दीगृह में डाल दिया और अपनी इच्छा की पूर्ति के उपलक्ष में उन्होंने नगर भर में तीन दिन तक उत्सव मनाने का आदेश दिया। तीन दिन बीत जाने पर उदयन ने अपने रक्षकों से पूछा—तुम्हारा राजा कहाँ है ?

रक्षकों ने कहा—शत्रु बन्दी बना लिया गया है, इसलिए हमारा राजा विजयगान कर रहा है।

उदयन को क्रोध आया और आवेश में उन्होंने उन रक्षकों से कहा—कैसा स्त्री-स्वभाव का राजा है। राजधर्म तो यह कहता है, कि शत्रु राजा को छोड़ दिया जाय या उसे कत्ल कर दिया जाय।

महाराज उदयन की यह बात उन रक्षकों ने अपने राजा प्रद्योत से कही। प्रद्योत ने बंदीगृह में आकर उदयन से कहा—बात तो तुमने बहुत ठीक कही है, मैं तुम्हें छोड़ भी सकता हूँ, लेकिन एक काम करना होगा ?

वह क्या ? उदयन ने पूछा।

तुम्हें वीणा सिखानी पड़ेगी।

सिखा दूँगा किन्तु मुझे गुरु मान कर तुम्हें मेरा अभिवादन करना होगा।

यह तो कभी न होगा—प्रद्योत ने काँप कर कहा।

तो फिर मैं भी वीणा बजाना नहीं सिखाऊँगा।

तब तो तुम मुक्त हो चुके ?

इसकी मुझे परवाह नहीं। बन्दी हूँ इसलिए शरीर तुम्हारे अधीन है, चाहे कुछ भी करो ! किन्तु मन से मैं सदा स्वाधीन रहूँगा। उदयन की यह बात सुनकर प्रद्योत चिंतित हुआ कि अब क्या किया जाय। कुछ सोच कर उसे एक उपाय सूझा और वह बोला—यदि मेरे अतिरिक्त दूसरा कोई अभिवादन करे तो क्या तुम उसे वीणा बजाना सिखा दोगे ?

उदयन के स्वीकार कर लेने पर उसने कहा—हमारे घर में एक कुबड़ी कन्या रहती है, वही तुमसे वीणा सीखेगी। वह नेपथ्य में बैठेगी और तुम बाहर बैठ कर उसे शिक्षा दे सकोगे। उदयन से यह तय करके प्रद्योत ने अपनी लड़की वासवदत्ता से कहा, बेटी, एक कोढ़ी व्यक्ति
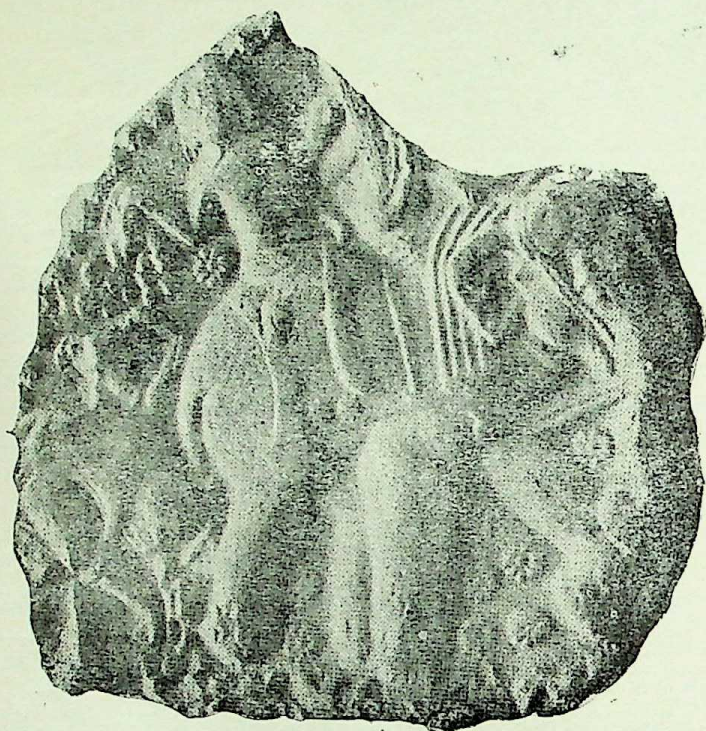
एक दिन दोनों प्रणयी पंछी के जोड़े की भाँति अवन्ती के पिंजड़े से निकल कर कौशाम्बी आ पहुँचे ।

(कौशाम्बी में प्राप्त मिट्टी का ठीकरा)

आया है, पर है बहुत गुणी। वीणा बजाने में अद्वितीय है। मैंने तुम्हें वीणा सिखाने के लिए उसे नियुक्त कर दिया है। तुम पर्दे के अन्दर बैठ कर सीखना, वह दिखायी पड़ेगा नहीं, क्या हर्ज है, इस प्रकार एक अनुपम गुण प्राप्त करने में।

उदयन ने वासवदत्ता को शिक्षा देना प्रारम्भ किया। उसे जो मंत्र-स्वर बताता यदि वह ठीक से उच्चारण कर पाती तो उदयन दुबारा उसे बताया करते। एक दिन कई बार बताये जाने पर भी वासवदत्ता का मंत्रोच्चारण शुद्ध न हुआ तो खीझ कर उदयन ने कहा—अरी मोटे-मोटे ओठों वाली कुबड़ी इस तरह बोल !

अपने को कुरूप और कुबड़ी कहते हुए सुन कर वासवदत्ता को भी तैश आ गया और उसने भी कहा—क्या बकवाद कर रहा है रे, दुष्ट कोढ़ी क्या मेरी ऐसी कुबड़ी होती है।

उदयन ने परदा हटा कर देखा तो साक्षात् शृंगाररस का अवतार सामने बैठा हुआ देखा और वासवदत्ता ने भी देखा कि यह कोढ़ी नहीं कामदेव का अवतार है। सब भेद खुल गया, पर किसी दूसरे को मालूम न हुआ। पढ़ाई के नाम पर अब प्रणय का पाठ शुरू हो गया। जब कभी राजा अपनी बेटी से पढ़ाई का हाल-चाल पूछता तो वह कह देती पढ़ रही हूँ। आखिर ऐसी शिक्षा का परिणाम कुछ न कुछ होना चाहिए था और एक दिन दोनों प्रणयी पंछी के जोड़े की भाँति अवन्ती के पिंजड़े से निकल कर कौशाम्बी आ पहुँचे। बन्दी उदयन अवन्ति नरेश के जामाता बन कर उनकी महत्त्वाकांक्षा की पूर्ति में सहायक हुए। इसके बाद क्या हुआ यह आगे पढ़िए।

# कौशाम्बी के अन्तःपुर में वासवदत्ता का सुहागशयन

उज्जयिनी के महाराज चण्डमहासेन की रूप-यौवन-गुणसम्पन्ना पुत्री वासवदत्ता को वीणा बजाने की शिक्षा देते हुए, महाराज उदयन ने अपने मन्त्री यौगन्धरायण की सलाह से वासवदत्ता का हृदय जीत कर उसी की हथिनी पर चढ़ाकर उसका जब अपहरण किया; तो चण्डमहासेन के दोनों पुत्र पालक और गोपालक बहुत कुपित हुए। किन्तु अपने पिता के यह समझाने पर वे चुप हो गये कि 'वासवदत्ता के साथ विवाह करने के लिए ही उन्होंने स्वाभिमानी महाराज उदयन को छल कर यहाँ बुलाया था—उन्होंने जो कुछ किया वह उचित ही था।'

पूर्व निश्चय के अनुसार महाराज उदयन वासवदत्ता सहित रास्ते में अपने मित्र राजा पुलिन्दक के अतिथि हुए, वहीं कौशाम्बी से अपने महाराज के स्वागत और रक्षा के लिए एक बहुत बड़ी वाहिनी भी आ गयी।

यौगन्धरायण के आदेशानुसार कौशाम्बी का अन्तःपुर सजाया जाने लगा। रानी वासवदत्ता के साथ महाराज उदयन के स्वागत के लिए कौशाम्बी नगरी पुलक रही थी। जब वासवदत्ता ने अन्तःपुर में प्रवेश किया तो उसने देखा कि यह अन्तःपुर अमरावती से उतार कर लाया गया है या अलकापुरी का है। अन्तःपुर के चारों ओर नीलकमल-स्वर्ण-कमल को अंकस्थ किये हुए विशाल सरोवर अपनी उत्ताल तरंगों से जन-मन को आप्यायित कर रहा था। सारा अन्तःपुर दो विभागों में था। बाहरी प्रकोष्ठ महाराज के व्यवहार के लिए था और भीतरी

महारानी के लिए। मुख्यद्वार के फाटक बहुत विशाल और भव्य थे। सामने की भूमि पानी से आर्द्र करके झाड़ दी गई थी और उसके ऊपर गोबर का आलिपन किया गया था।

राजप्रासाद का चौक विविध प्रकार के सुगन्धित पुष्पों और रंगीन अक्षतों से सुसज्जित था। ऊँचे फाटकों के ऊपर गजदन्तों में मालती की मनोहर मालाएँ भंगिमा के साथ लटक रही थीं। फाटक के ऊपरी कक्ष में गवाक्ष थे, उनके नीचे मणि-मुक्ता की मनोहारी मालाएँ लटक रही थीं। तोरण के कोणों में हाथी की मूर्तियाँ थीं, जिनके सामने प्रस्तरमयी स्त्रियाँ सुकुमार भंगी में तरुशाखा पकड़े हुए खड़ी थीं। महारजन और कुसुम्मी रंगों से रंगे हुए तोरण द्वारों के ऊपर सौभाग्य-पताकाएँ फहरा रही थीं जिन्हें उड़ाने या पकड़ने की मुद्रा में तोरण शाल-भंजिकाएँ दिखायी पड़ रही थीं। तोरण-स्तम्भ के दोनों पार्श्वों में दो वेदियाँ बनी थीं, जिन पर स्फटिक के मंगल-कलश स्थापित थे। उन कलशों को जल से भर दिया गया था, और उनके ऊपर हरित आम्र पल्लव आच्छादित कर उन्हें अत्यन्त ललाम बना दिया गया था। उन वेदियों के पीछे मणि-रत्न-जटित कपाट थे; जहाँ पहुँच कर प्रासाद के अन्दर प्रवेश करने वाली सोपान पंक्तियाँ स्पष्ट दिखायी देती थीं। सीढ़ियों पर चन्दन, अगर, केशर, कपूर आदि माँगलिक सुगन्ध द्रव्यों का चूर्ण बिछा हुआ था। सोपान के प्रवेश द्वार पर द्वारपाल बैठा हुआ था। देहली पर दधि, माष की बलि देवताओं के लिए रखी हुई थी। जिसे अन्तःपुर के पालतू सारस, कपोत, मयूर, लवा, और तित्तिर चहकते हुए खा रहे थे।

आगे बढ़ने पर अन्तःपुर का चतुःशाल मिला जहाँ महाराज का विदूषक वसन्तक बैठा हुआ इस ढङ्ग से पकवान खा रहा था कि उसे देखकर महारानी वासवदत्ता खिलखिलाकर हँस पड़ीं। चतुःशाल के चारों ओर काष्ठ के अलिन्द थे उन पर सौभाग्य सूचक शालभंजिकायें बनी हुई थीं। चतुःशाल को पार करते ही एक लघु वृक्ष वाटिका मिली।

उसके मध्य में मणिजटित सोपानों की एक दीर्घिका थी। फल, पुष्पों से लदे हुए विटप और झूमती हुई लताकुंजें महारानी का स्वागत झुक-झुककर कर रही थीं। इन छोटे-छोटे विटपों और कोमलकान्त लताओं को भेंटती हुई महारानी जब आगे बढ़ीं तो क्रमशः गुल्म फिर लतामंडप और सबसे अन्त में विशाल वृक्ष सजग प्रहरी की भाँति खड़े मिले। एक ओर चम्पक पाली थी, एक ओर सिन्धुकर की श्रेणियाँ थीं और एक ओर बकुलों की वीथी तथा दूसरी ओर पाटल पुष्पों की पंक्तियाँ खड़ी हँस रही थीं।

एक भाग में मूलक (मूली) आलुक (आलू) पलकी (पालक) आम्रातक (आमड़ा) ऐर्वारुक (फूटी) त्रिपुष (खीरा) वृन्ताक (बैंगन) कूष्माण्ड (कुँहड़ा) अलावु (लौकी) सूरण (सूरन) शुकनासा (अगस्त) स्वयं-गुप्ता (केवांच) लशुन (लहसुन) पलाण्डु (प्याज) आदि साग-भाजी और चटनी की विटपी और लताएँ थीं उन्हीं के पार्श्व में जीरक (जीरा) सर्षप (सरसों) हरिद्रा (हल्दी) एला (इलाइची) लवंग (लौंग) सम्फु (सौंफ) तेजपत्र (तेजपात) आदि मसाले महक रहे थे।

जब महारानी आगे बढ़ती हैं तो उन्हें धारागृह दिखायी पड़ता है। एक परिचारिका बड़े अदब से दाहिनी ओर इशारा करती हुई बोली— आर्ये, एक दिव्य दृष्टि इन पर भी छोड़िए यह कुब्जक मालती है, यह आमलक मल्लिका है, यह जाती है। यह कुरण्टक है, यह नवमल्लिका है और यह जवा का गुल्म है। इन्हीं के सुगन्धित पुष्प से आपका शयन कक्ष सजाया गया है। इसके बिना नववधू का वासक देश ही नहीं सजता। यह नित्य आपका मनोविनोद करेंगी। नव-दम्पती के प्रणय-कलह में शर्त बनेंगी—महारानी कुछ लज्जित और सस्मित होकर उधर निहारने लगीं कुछ ठिठक गयीं तो दूसरी परिचारिका ने हँसते हुए कहा— भट्टदारिके, आगे बढ़िए, सुहाग-शयन आपकी प्रतीक्षा कर रहा है। यह अनुरागभरी फूली हुई लता आर्य से अधिक प्रेम रखती है। देखो

न, सौत की भाँति आग्रहभरी निगाहों से देख रही है। महारानी हँस पड़ीं और मल्लिका की फूली हुई टहनी को चूम कर आगे बढ़ीं। सघन छाया में प्रेंखा-दोला (झूला) मिला। जिस पर सुकुमार कुसुम-दल बिछे हुए थे। परिचारिका ने कहा, देवि, जब वर्षाकाल आयेगा, आनन्दोल्लास से जब चन्द्रिका हास-वृष्टि करेगी गौर कान्ति वाली विद्युत आकाश गङ्गा पुलिन पर झूलेगी, उस समय मृगनयनी महारानी और कमलनयन महाराज की आँखें दिशाओं को नीराजित करती हुई इस प्रेंखाविलास से भूलोक और द्युलोक में समानान्तर क्रियाओं की कल्पना सत्य करेंगी।

यह सुनकर महारानी वासवदत्ता ने शरमा कर तेजी से पग ज्योंही बढ़ाया तो नूपुरों की झनकार सुनकर वाटिका का पालतू मयूर सामने नाचने लगा। महारानी की रसना की रुनझुन सुन कर भवन-दीर्घिका का कलहंस कोलाहल करने लगा। उन्हें देखकर महारानी वासवदत्ता का मन-मयूर नाच उठा, उनके अङ्ग-अङ्ग से रति-रहस्य प्रस्फुटित हो उठा। मदविह्वला महारानी के हृदय में एक अपरिचित हलचल पैदा हो गई। यह दशा देख कर एक परिचारिका ने निस्तब्धता भंग करते हुए कहा— देवि, शयनकक्ष का द्वार इधर है—यह सुनते ही महारानी चौंक कर और आगे बढ़ीं।

शयनकक्ष के प्रवेश द्वार पर लवलिका केतकी की पुष्पधूलि से सजे हुए आलबाल थे। कमलनियों के मंत्रचक्रकों में कुंकुम रेणु बिखरे हुए थे। कर्पूर पल्लव के रस से गन्धपात्र सुवासित थे। तमालवीथिका के अन्धकार में मणियों के प्रदीप जल रहे थे। सुस्मितवदना अवनतमुखी परिचारिकाएँ द्वारपाल बनी सजग खड़ीं थीं। एक सेविका गन्ध, माल्य, अक्षत, पुष्प आदि पूजन-सामग्री लेकर प्रस्तुत खड़ी थी, महारानी ने प्रवेश द्वार पर कुल देवता और वास्तु देवता की अर्चना कर देहली पर पैर रखा। सब परिचारिकाएँ पीछे हट गयीं केवल एक दासी संवाहिका

ने महारानी के साथ शयनकक्ष में प्रवेश किया। उसने महारानी का चरण संवाहन किया, विविध आभरणों से उन्हें छविगृह बनाकर सौन्दर्य-दीप से प्रदीप्त कर दिया।

जब महारानी पूर्ण शृङ्गार कर चुकीं तो शय्या के पार्श्व में पिंजर-बद्ध सारिका ने अपनी विद्वत्ता और रसिकता का प्रदर्शन कर महारानी के अधरों पर लज्जायुक्त मुस्कान की हल्की रेखा प्रकट कर दी।

सारिका ने कोमल शब्दों में कहा—'आर्ये, राज्य का सुख गृह है, गृह का सुख कलत्र है और कलत्र का सुख कोमल और मंगलजनक शय्या है। देवि, शय्या गृहस्थ का मर्म स्थान है।'

इतने में प्रवेश द्वार पर महाराज की पगध्वनि सुनायी पड़ी। संवाहिका झट बाहर निकल गयी। प्रवेश करते हुए महाराज ने कहा, देवि, यह सारिका बड़ी मुखर है, अगर इसने कोई बात कही हो तो ध्यान न देना। यह तो यों ही बका करती है, क्यों री, प्रथम मिलन ही में प्रणय-कलह कराने का उपक्रम करने लगी ?

अवगुंठन को शिथिल करती हुई सस्मितवदना वासवदत्ता बोली—'सारिका तो शास्त्र की बात कह रही है। किन्तु चोर की दाढ़ी में तिनका होता है यह कहावत झूठ नहीं है।'

'मैंने अवन्ती के चण्डमहासेन की दिव्य कन्या को चुराया है, इस चोरी से इन्कार नहीं कर सकता'—यह कहकर महाराज उदयन ने महारानी वासवदत्ता को बाहु-पाश में आबद्ध कर लिया।

मलयगिरि चन्दन की बनी हुई शय्या के सिरहाने कूर्चस्थान पर वत्सराज के कुल देवता की मूर्ति थी। उसके पास ही वेदिका पर माल्य, चन्दन और उपलेपन रखे थे। इसी वेदिका पर सिक्थ करण्डक (सुगंधित मोमबत्ती की पिटारी) और सौगन्धिक पुटिका (इत्रदान) रखी थी। एक ओर मातुलुंग के छाल और ताम्बूल रखे थे। शय्या के नीचे पतद्ग्रह (पीकदान) रखा था। ऊपर नागदन्त पर लटकी हुई वीणा और चित्र-

बाहु-पाश में आबद्ध महारानी ने 'मुंच-मुंच महाराज'--कहकर अपने को छुड़ाने का प्रयत्न किया ।

--चित्रकार वीरेन्द्र सिंह

फलक थे। देर तक न मुरझाने वाली कुरण्टक की मालाएँ लटक रही थीं। तूलिका और रंगपीठिका एक अक्ष (आला) में सजी थी। शय्या से कुछ दूर पर एक आस्तरण पर चतुरङ्ग (शतरंज) की गोट बिछी थी। शयन कक्ष के सामने शुक, सारिका, लव के पिंजर टँगे हुए थे।

कक्ष के एक भाग में मृदङ्ग, पणव, दर्दुर, वीणा, वेणु तथा अनेक सुन्दर सज्जित पुस्तकें धरी थीं। सम्पूर्ण कक्ष सम्राट् का नहीं बल्कि एक कलाकार का-सा प्रतीत हो रहा था। बाहुपाश में आबद्ध महारानी ने 'मुंच-मुंच महाराज कह कर अपने को छुड़ाने का प्रयत्न किया, किन्तु वह छूट न सकीं। हार कर पुष्पमयी सुहाग शय्या की शरण हो गयीं। जलते हुए सिक्थ करण्डक बुझ गए, केवल मणि प्रदीप जल रहे थे, जिन पर केशर, कर्पूर, अगरु, चन्दन का चूर्ण छोड़कर महारानी उन्हें, बुझाने का असफल प्रयत्न कर रही थीं सहसा उनकी दृष्टि उस चित्रफलक पर पड़ी, जिसमें उर्वशी प्रथम मिलन में पुरुरवा की अभ्यर्चना कर रही थी। मदन-विह्वला महारानी कुछ भ्रमित-सी, भूली हुई-सी सहसा उठीं और पुष्पास्तरन के शिरोभाग में रखे हुए पुष्पस्तवकों को उठाकर महाराज के चरणों में बिखेरना ही चाहती थीं, कि उन्मत्त महाराज उदयन ने उन्हीं के साथ रानी को भुजलताओं में इस प्रकार जकड़ लिया कि फिर वह न छूट सकीं। सुहाग शय्या की अधखिली पुष्प कलियाँ खिल-खिलाकर हँस पड़ीं। आकाश में चन्द्र छिप-छिप कर झाँक रहा था। ठीक इसी समय सारिका से न रहा गया वह बोल उठी—

'कटाक्षेभ्यो विभ्यन् निभृत इव
चन्द्रोऽभ्युदयन्ते।

यह सुनते ही महाराज उदयन हँस पड़े। लज्जावनत-मुखी महारानी वासवदत्ता के अंग-प्रत्यङ्ग शिथिल पड़ गए तभी सुहाग शय्या सार्थक बनी।

# कौशाम्बी के अन्तःपुर का कौशल

यौगन्धरायण जैसे प्रतिभाशाली नीति-निपुण मंत्री और रुमण्वान् जैसे रण-नीति-कुशल परम वीर सेनापति के होते हुए भी दुर्दैव के चक्र में पड़ कर अद्भुत पराक्रमी महाराज उदयन अपने शत्रु राजा आरुणि से युद्ध में पराजित हो गए। कमनीय कौशाम्बी परायी हो गयी। पाण्डव वंश की भुजाओं से पालित वत्सदेश पराधीन हो गया और महाराज उदयन अपने पारिपार्श्वकों, परिजनों, मंत्रियों, अमात्यों और परिवार वालों को साथ ले जाकर मगध और वत्सदेश की सीमा पर स्थित 'लावणक' नामक गाँव में शिविर डाल कर निवास करने लगे।

## अनहोनी

विचिन्तित मंत्री यौगन्धरायण से अकस्मात् एक दिन किसी सिद्ध महात्मा ने बताया कि मगध की राजकुमारी पद्मावती बहुत शीघ्र कौशाम्बी नरेश की राजमहिषी बनकर कौशाम्बी के अन्तःपुर को सुशोभित करेंगी और हाथ से गयी हुई राजलक्ष्मी महाराज उदयन पुनः प्राप्त करेंगे।

दूरदर्शी मंत्री यौगन्धरायण को सिद्ध-महात्मा की बात पर पूरा विश्वास हो गया और उसने वहीं पर महाराज उदयन के साथ पद्मावती का विवाह कराने की दृढ़ प्रतिज्ञा की। वासवदत्ता जैसी रूप, यौवन गुण सम्पन्ना दिव्यांगना के रहते हुए, महाराज उदयन दूसरा विवाह करेंगे यह एक अचिन्त्य और असंभव बात थी। मगध नरेश महाराज दर्शक भी अपनी बहिन पद्मावती का विवाह विवाहित व्यक्ति के साथ नहीं करेंगे। इस समस्या का हल यौगन्धरायण जैसे राजनीतिज्ञ, कुशल स्वामिभक्त मंत्री ही कर सकते थे। महाराज उदयन का अदम्य पत्नी-प्रेम और महारानी

वासवदत्ता की अनिन्द्य पतिभक्ति यौगन्धरायण की राजनीति स्वार्थ-सिद्धि के लिए बाधक बन रही थी। महाराज कौशाम्बी छोड़ सकते हैं, किन्तु अपनी हृदयेश्वरी वासवदत्ता का क्षण भर का वियोग उन्हें सहन नहीं। किन्तु वासवदत्ता अपने पति के मंगल और वैभव के लिए अपना सर्वस्व त्याग कर सकती है—ऐसा यौगन्धरायण को पूर्ण विश्वास था। इसलिए उसे एक उपाय यह सूझा कि यदि महारानी वासवदत्ता को कुछ दिनों तक छिपा रखा जाय तो एक तीर से दो शिकार बड़ी आसानी से हो सकेंगे। महाराज को विधुर समझ कर मगध नरेश अपनी बहिन का विवाह करने से इनकार नहीं करेंगे और वत्सदेश तथा राजधानी कौशाम्बी भी पुनः हस्तगत हो सकेगी।

ऐसा सोचकर यौगन्धरायण ने सेनापति रुमण्वान् से अपना विचार प्रकट करते हुए उससे जब सलाह माँगी तो सेनापति चौंका और बोला, अरे यह क्रूर कौशल उदयन महाराज का सर्वनाश कर देगा। देवी वासवदत्ता तो इस निश्चय को स्वीकार कर लेंगी, यह मुझे भी विश्वास है, लेकिन आगे क्या होगा ? यह भी तुमने सोचा है, देवी के वियोग में महाराज वहीं अपने प्राण भी न खो बैठें ?

'ठीक है, सेनापति, लेकिन ऐसा बहुत कम सुना गया है, कि किसी पुरुष ने स्त्री के वियोग में अपने प्राण त्याग दिये हैं। हाँ, आर्य की स्थिति मरणासन्न हो सकती है, लेकिन तुम तो रहोगे ही, समझा-बुझा कर, स्थान परिवर्तन करा कर उन्हें तुम जीवित रख सकते हो – यह मुझे विश्वास है।'

यौगन्धरायण का यह तर्क सेनापति रुमण्वान् की समझ में आ गया और उसने अपनी स्वीकृति दे दी। मन्त्री ने सेनापति को यह सहेज कर कि यह क्रूर निश्चय चार कानों तक ही सीमित रहे—देवी वासवदत्ता से जाकर निवेदन किया। ऐसा भयंकर निश्चय सुनते ही देवी काँप कर स्तब्ध हो गयीं। उन्हें काठ-सा मार गया। प्रकृतिस्थ करते

हुए यौगन्धरायण ने उनसे कहा—आर्ये, महाराज की समृद्धि और उनके यश की रक्षा के लिए क्या आप अपने सुखों का त्याग कुछ दिनों तक नहीं कर सकतीं ? मंत्री से यह सुन कर रानी वासवदत्ता ने कहा—आर्य-यौगन्धरायण, आर्यपुत्र के सुख समृद्धि और कीर्ति के लिए मैं केवल भौतिक सुखों को ही नहीं बल्कि अपने प्राणों तक को दे सकती हूँ, जिससे उनका मगल हो सके। वही कार्य आप करें, मैं आपकी सहायता करने के लिए तैयार हूँ। लेकिन आप मुझे छिपा कर रखेंगे कहाँ ?

यौगन्धरायण—आर्ये, आपको किसी और वेष में तथा कल्पित नाम से मैं ऐसे स्थान पर कुछ दिनों तक रखना चाहता हूँ, जहाँ आपकी मर्यादा और स्वाभिमान पर किसी प्रकार की आँच न लग सके।

वासवदत्ता—ऐसा आश्रय कौन है ?

यौगन्धरायण—मगध की राजकुमारी पद्मावती !

क्या कहा ? मगध की राजकुमारी······

हाँ, आर्ये, राजकुमारी पद्मावती के आश्रय में ही आप सुरक्षित रह सकती हैं।

गंभीर वेदना को छिपाए हुई मौन वासवदत्ता से यौगन्धरायण ने बड़े विनम्र और संवेदना के स्वर में कहा—देवि, मैं भली-भाँति समझता हूँ, कि महासेन प्रद्योत की पुत्री वत्सेश्वरी के लिए मगध की राजकुमारी के आश्रय में रहना अत्यधिक कष्टकर होगा, लेकिन इससे बढ़ कर और कोई दूसरा आश्रय हो नहीं सकता। राजप्रासाद ही आपके लिए उपयुक्त इसलिए है, कि मेरे और आपके चरित्र की साक्षी पद्मावती रहेगी। वह स्वयं सच्चरित्र कुलीन और सुशील राजकन्या है। निकट भविष्य में वह आपके अन्तःपुर की राजमहिषी भी होंगी—इन सब बातों को आगे पीछे, सोच-समझ कर ही मैंने यह कठोर निश्चय किया है।

उच्छ्वास भर कर रानी वासवदत्ता ने कहा—एवमस्तु, जैसा आप उचित समझें—वही करें ?

योजना को सफल होते देख प्रसन्न यौगन्धरायण ने फिर निवेदन किया कि देवि, मेरी इस योजना की सफलता असफलता केवल आप पर ही निर्भर है। इसलिए निवेदन है, कि जब तक वत्सराज्य का उद्धार हो जाय, कैशाम्बी के अन्तःपुर में घोषवती वीणा न पहुँच जाय, तब तक देवी को बड़े कौशल और सावधानी से रहना पड़ेगा। कभी किसी अवसर में भेद न खुलने पाये—यह आश्वासन मैं वत्सेश्वरी से चाहता हूँ।

वासवदत्ता—आर्य यौगन्धरायण, भगवान् मुझे शक्ति दें कि मैं इस असिधार पथ को बाधारहित होकर पार कर सकूँ। आप विश्वास रखें, भौतिक बाधाएँ और कष्ट मुझे पथ-भ्रष्ट नहीं कर सकेंगे। आर्यपुत्र के पुनर्दर्शन और उनकी सेवा की लालसा मुझे सुखी और सन्तुष्ट बनाये रखेगी मैं इतना ही चाहती हूँ मंत्रिप्रवर, कि बहुत दिनों तक मुझे आर्य पुत्र के दर्शनों से वंचित न रखें।

देवि, आप जानती ही हैं, कि बहुत ही शीघ्र महाराज यहाँ से मगध जाने वाले हैं, मगध में रह कर आप उन्हें जी भर कर देख सकेंगी, लेकिन आप आत्म विस्मृत न बन जाँय इस बात का हर क्षण ध्यान रखेंगी। वहाँ रहती हुई आप को महाराज न देख सकें—इस प्रकार रहने की व्यवस्था आपको करनी होगी।

नहीं मंत्रिवर, जो आप कहेंगे वही होगा। आर्य पुत्र के मंगल की कामना ही मेरी रक्षा करेगी, उनके हित-मंगल का ध्यान रख कर ही मैं सभी रहस्य छिपाने की चेष्टा करूँगी—आप निश्चिन्त रहें।

महारानी से ऐसे दृढ़ वचन सुनकर यौगन्धरायण ने सेनापति रुमण्वान् से आकर निश्चय को कार्यान्वित करने की सलाह की। राजनीति के अनुसार अमात्य-मण्डल और राज के प्रमुख अङ्गों से भी यह निश्चय

बता कर उसने मृगया के शौकीन महाराज उदयन को सेनापति और अमात्यों के साथ शिकार खेलने के लिए भेज दिया। सन्ध्या को शिकार से लौटकर महाराज ने देखा कि सारा शिविर आग से भस्म हो गया है। रक्षक सैनिक और अमात्य लोग राख की ढेरी के पास बैठे रो रहे हैं, पूछने पर पता चला कि अकस्मात् शिविर में आग लग गयी। हाय, इस निर्दयी आग में रानी वासवदत्ता भी स्वाहा हो गयीं, उन्हें बचाने के लिए मंत्री यौगन्धरायण भी आग में कूद कर विलीन हो गए।

यह सुनते ही महाराज उदयन मूर्च्छित होकर गिर पड़े। सेनापति रुमण्वान् उन्हें होश में लाने का प्रयत्न करने लगे। प्राणों से भी अधिक प्रिय, जो विपत्ति में भी उन्हें प्रफुल्लित तथा राज्य अपहृत होने पर भी उन्हें वसुधाधिप बनाये रखती थी वासवदत्ता का, निधन तथा यौगन्धरायण जैसे मन्त्री का भी वियोग राजा को पागल बनाने के लिए पर्याप्त था। फिर भी सेनापति रुमण्वान् की सावधानी उन्हें जीवित बनाये रखने के लिए सचेष्ट थी। वह उन्हें शीघ्र दूसरे स्थान पर ले जाकर समझाने-बुझाने लगा।

## तपोवन

उधर यौगन्धरायण ने परिव्राजक ब्राह्मण का वेष धारण कर वासवदत्ता को अपने साथ लिये हुए मगध की ओर प्रस्थान किया। हंस से बिछुड़ी हुई हंसी के समान वासवदत्ता को देखकर यदि मार्ग में कोई कुछ पूछता तो यौगन्धरायण कह देता कि यह मेरी बहिन अवन्तिका है। इसका पति विदेश चला गया है, इसलिए मैं उसके लौटने तक इसे मगध की राजकुमारी पद्मावती के आश्रम में रखने जा रहा हूँ। मगध की राजधानी राजगृह के समीप ही स्थित एक तपोवन में तपस्वियों का आश्रम था, वासवदत्ता को लेकर यौगन्धरायण के वहाँ पहुँचने पर चलो हटो, चलो हटो की ध्वनि उन्हें सुनायी पड़ी। तपोवन के निवासी

उस ध्वनि को सुनकर इधर-उधर हट रहे थे। भाग कर लुक-छिप रहे थे। अशिष्ट व्यवहार से भरी हुई उस ध्वनि को सुन कर यौगन्धरायण चकराया और सोचने लगा, तपोवन में भी राजमार्गों की भाँति लोगों को हटाया जा रहा है। उफ, कैसा अन्याय, यह तपस्वियों को मार्ग से नहीं हटा रहे बल्कि स्वयं धर्म-मार्ग से हट रहे हैं।

विस्मित और भयभीत वासवदत्ता ने पूछा—भद्र, क्या हम भी हटाए जाएँगे ?

यौगन्धरायण—कोई आश्चर्य नहीं देवि, अनजान में देवताओं का भी अपमान हो जाया करता है, फिर हम तो मनुष्य हैं। भगवान्, हमारी विपत्तियाँ भी इसी प्रकार हटायी जायँ ?

वासवदत्ता—आर्य, मुझे रास्ते की थकावट उतना दुःख नहीं दे रही है, जितनी इन लोगों की अशिष्टता देखकर दुःख हो रहा है।

यौगन्धरायण—देवि, सर्व-सुख परित्याग कर हमने जिस पथ को अपनाया है, उसमें न जाने इस प्रकार की कितनी बातें हमें सुननी और सहनी पड़ेंगी। हमारे कठिन-व्रत की यह परीक्षा है, इसलिए आप क्षुब्ध या व्यथित न हों।

वासवदत्ता—ठीक है, इष्टसिद्धि के लिए जहर को भी अमृत समझ कर पान करूँगी।

इतने में पारिपार्श्वक चलो हटो, चलो हटो की कर्कश ध्वनि करते हुए सामने दिखायी पड़े। उनके पीछे-पीछे दौड़ते हुए एक वृद्ध कंचुकी ने आकर उन्हें डाटते हुए कहा—चुप रहो, यह तपोवन है, राजधानी नहीं। यहाँ शासन और दण्ड का प्रयोग नहीं हुआ करता ?

'जो आज्ञा' कह कर दोनों अनुचर चुप हो गए। तब चतुर यौगन्धरायण ने क्या बात है इसका पता लागने के लिए उसके पास जाकर पूछा—लोगों को क्यों हटाया जा रहा है ?

तपस्वी समझ कर कंचुकी ने हाथ जोड़ कर यौगन्धरायण से कहा—स्वामिन्, मगधराज दर्शक की माता इस समय इसी तपोवन में निवास कर रही हैं। उन्हीं के दर्शनार्थ राजकुमारी पद्मावती यहाँ आयी हुई थीं, अब राजगृह वापस जा रही हैं, जाने से पहले माता जी के आदेश से इस आश्रम की तपस्विनी के दर्शन करने यहाँ आयी हुई हैं। हम सब उन्हीं के साथ हैं। आश्रम के नियमों से अपरिचित पारिपार्श्वकों ने आप लोगों को हट जाने के लिए जो आवाज दी है, उसे क्षमा करें, मैंने स्वयं आकर उन्हें ऐसा करने से रोक दिया है।

यह सुनकर कि राजकुमारी यहीं ठहरी हैं, यौगन्धरायण को ऐसा लगा मानों सफलता स्वयं साकार बनकर उसके सामने खड़ी है। उसे अपनी इष्टसिद्धि होने में पूर्ण विश्वास हो गया। सपरिजन राजकुमारी जब तपस्विनी के आश्रम में चली गयी, तो यौगन्धरायण भी वासवदत्ता को लेकर वहाँ पहुँच गया। कुटी के अन्दर बैठी तपस्विनी को राजकुमारी पद्मावती ने प्रणाम किया। अशीर्वाद देते हुए तपस्विनी ने राजकुमारी का स्वागत किया। पद्मावती की शिष्टता, शालीनता और सुन्दरता को देखकर वासवदत्ता मन ही मन उसकी प्रशंसा करने लगी। राजकुमारी की चेटी से तपस्विनी ने पूछा कि भद्रे, राजकुमारी का विवाह-सम्बन्ध अभी कहीं निश्चित हुआ या नहीं? दासी ने उत्तर दिया—आर्ये, अभी निश्चित तो नहीं हुआ है, परन्तु अवन्तिका के महाराज प्रद्योत ने दूत भेजकर अपने कुमार से विवाह करने की इच्छा प्रकट की है।

यह सुनते ही वासवदत्ता मन ही मन बहुत प्रसन्न हुई, कि यदि ऐसा है तब तो मेरी इनकी एक प्रकार से आत्मीयता तो है ही।

दासी का उत्तर सुनकर तपस्विनी ने कहा यदि यह सम्बन्ध निश्चित हो जाता है, तो बहुत अच्छा होगा। दोनों कुल महान् हैं।

इतने में राजकुमारी ने अपने कंचुकी से कहा, भद्र, मैं आश्रम

वासियों की कुछ सेवा करना चाहती हूँ। पूछ कर पता लगाओ क्या कोई तपस्वी मेरी सेवा स्वीकार कर मुझे कृतार्थ करेंगे।

राजकुमारी की आज्ञा से कंचुकी ने बाहर निकल कर घोषणा की कि—मगधराज महाराज दर्शक की बहिन राजकुमारी पद्मावती श्रद्धा-भक्ति पूर्वक धर्मोपार्जन के लिए अर्थ द्वारा आश्रम वासियों, तपस्वियों की सेवा करना चाहती हैं। यदि किसी तपस्वी को घट-पट की आवश्यकता हो या किसी को गुरु-दक्षिणा देने के लिए धन की आवश्यकता हो अथवा जिस किसी का कोई प्रयोजन हो उसकी आवश्यकता की पूर्ति कर राजकुमारी कृतार्थ होना चाहती हैं।

संयमी, संतोषी आश्रमवासियों में से तो कोई नहीं आया, किन्तु यौगन्धरायण ने उचित अवसर जानकर राजकुमारी के पास पहुँच कर निवेदन किया, कि मैं एक अर्थी यहाँ उपस्थित हूँ।

यौगन्धरायण को देख कर तपस्विनी ने कहा—इस तपोवन के सभी तपस्वी सन्तुष्ट और सुखी हैं—मालूम होता है, यह कोई बाहर से आया हुआ नवागन्तुक है।

पद्मावती ने कहा, इन्हीं के आने से मेरा यहाँ का आना सफल हुआ। कंचुकी ने यौगन्धरायण से पूछा—आप क्या चाहते हैं भगवन्?

यौगन्धरायण ने कहा—मुझे कुछ न चाहिए। एक ही निवेदन है—यह मेरी बहिन अवन्तिका है। इसका पति विदेश गया है, मैं चाहता हूँ, कि राजकुमारी कुछ दिनों तक इसे अपने आश्रय में रखें, बस।

कंचुकी ने राजकुमारी से कहा कि आर्ये, इस परिव्राजक की याचना बहुत बड़ी है। धन, रत्न देना तो सरल है, पर धरोहर रखना बहुत ही कठिन है।

राजकुमारी ने कहा, घोषणा कर देने के बाद अब ऐसी बातें करनी उचित नहीं भद्र, अब जो यह चाहते हैं, वही होना चाहिए।

यह सुनते ही यौगन्धरायण ने वासवदत्ता को बुला कर पद्मावती को

उसे सौंप दिया। उसे देखते ही पद्मावती समझ गयी, कि निःसन्देह यह स्त्री उच्च वंश की है और सुख, समृद्धि से भरे हुए घर में इनका पालन हुआ है।

वासवदत्ता को पद्मावती के सुपुर्द कर यौगन्धरायण वहाँ से जाना चाहता था, कि दूर से आया हुआ थका-माँदा एक ब्रह्मचारी वहाँ आ पहुँचा। कंचुकी ने उसे हाथ-मुँह धोने के लिए पानी और बैठने के लिए आसन दिया। जब वह सुस्ता रहा था, तब यौगन्धरायण ने उससे पूछा—बटुक, आप कहाँ से आ रहे हैं।

ब्रह्मचारी—मैं राजगृह का निवासी हूँ, वेदाध्ययन के लिए लावणक-जनपद गया हुआ था।

लावणक का नाम सुनते ही वासवदत्ता का हृदय भर आया, उसकी वेदना जाग्रत हो आयी, उसे यह विश्वास हो गया कि यह ब्रह्मधारी आर्यपुत्र के समाचार से अवश्य अवगत होगा। इसलिए बड़ी उत्सुकता से वह उसकी बातें सुनने लगीं।

यौगन्धरायण ने ब्रह्मचारी से पूछा—आपका अध्ययन समाप्त हो गया है।

ब्रह्मचारी—अध्ययन समाप्त कहाँ हुआ, बीच ही में वहाँ एक ऐसी भयंकर दुर्घटना हो गयी, जिससे लावणक जनपद ही सुनसान हो गया, और मुझे भी वापस लौटना पड़ा।

यौगन्धरायण—दुर्घटना कैसी ?

ब्रह्मचारी—कुछ दिनों से वहाँ वत्सदेश के राजा महाराज उदयन अपनी रानी और मंत्रियों के साथ रह रहे थे। एक दिन आखेट के लिए महाराज जंगल गए हुए थे, उसी समय अचानक उनके शिविर में आग लग गयी, जिसमें उनकी प्राणों से भी अधिक प्रिय रानी वासवदत्ता भी जल गयीं।

यह सुनते ही वासवदत्ता ने अपने मन में कहा—मैं अभागिन तो अभी जी रही हूँ।

बड़ी उत्कण्ठा से यौगन्धरायण ने फिर पूछा—हाँ, हाँ यह तो हम भी जानते हैं, कि उदयन महाराज की रानी वासवदत्ता थीं, जिन्हें वे बहुत अधिक प्यार करते थे। लेकिन उनके जल जाने के बाद महाराज की क्या दशा हुई।

ब्रह्मचारी ने कहा—यही नहीं बल्कि महारानी को बचाने के लिए उनका प्रिय मंत्री यौगन्धरायण भी आग में कूद कर विलीन हो गया। यह समाचार जब महाराज ने आखेट से लौट कर सुना तो वह कटे हुए कदली स्तम्भ की भाँति गिर पड़े। सेनापति रुमण्वान् ने उन्हें होश में लाने का तुरन्त उपाय किया तो वह उसी आग में कूद कर प्राण देने के लिए उद्यत हो गए। किन्तु सेनापति और अमात्यों ने बड़ी कठिनाई से उन्हें रोक रखा।

ब्रह्मचारी की इन बातों को सुनकर वासवदत्ता का हृदय फटा जा रहा था, वह मन ही मन कह रही थीं, कि मैं जानती हूँ, आर्यपुत्र का मुझ पर ऐसा ही प्रेम था।

यौगन्धरायण ने जब आगे पूछा तो ब्रह्मचारी ने बताया कि विह्वल महाराज अपनी रानी के शेष आभूषणों को हृदय से लगा-लगा कर रोते रहे। कभी मूर्च्छित होते, कभी विलाप करते।

सेनापति रुमण्वान् ने बड़े धैर्य और यत्न से उन्हें सँभाला। उनकी भी हालत बड़ी शोचनीय हो गयी है। फिर भी महाराज को जीवन धारण कराये रखने में वे बहुत ही सफल हुए हैं। यह सुनकर यौगन्धरायण और वासवदत्ता ने सन्तोष की साँस ली। पद्मावती की दासियाँ आपस में कहने लगीं, कि बहुत ही कोमल हृदय का राजा है, यह सुनकर वासवदत्ता की आँखों से आँसू गिरने लगे तो वही सखियाँ कहने लगीं, आर्या का हृदय उनसे भी अधिक कोमल है, दूसरे के दुख की बात सुनकर इनका हृदय विह्वल हो गया है, इसीलिए रो रही हैं।

यौगन्धरायण ने फिर पूछा—बटुक, आजकल महाराज कहाँ हैं ?

ब्रह्मचारी ने कहा—रुमण्वान् और अन्य मंत्री गण उन्हें वहाँ से लेकर कहीं और चले गये हैं। राजा के चले जाने से वह स्थान चन्द्रमा और नक्षत्र रहित आकाश की भाँति सूना हो गया है। मैं भी वहाँ की हालत देखकर बहुत दुःखी हूँ, वहाँ ठहरना मेरे लिए असंभव हो गया, इसलिए चला आया।

तपस्विनी ने कहा, जब राह चलते लोग इतनी प्रशंसा करते हैं, तब तो अवश्य ही वह राजा बहुत गुणवान् होगा।

चेटी ने पद्मावती से पूछा—राजकुमारी जी, क्या कौशाम्बी नरेश अब किसी दूसरी स्त्री से विवाह नहीं करेंगे ?

पद्मावती ने कहा—सखी, यही तो मैं भी सोच रही हूँ।

इसके बाद ब्रह्मचारी और यौगन्धरायण दोनों उस आश्रम से चले गए। पद्मावती ने भी राजमहल जाने की आज्ञा माँगते हुए तपस्विनी को प्रणाम किया और उन्होंने योग्य वर मिलने का आशीर्वाद देकर पद्मावती को विदा किया। वासवदत्ता ने तपस्विनी को प्रणाम किया तो उन्हें भी उन्होंने विदेश गए हुए पति से शीघ्र मिलने का आशीर्वाद दिया।

## राजगृह

राजगृह के राजप्रासाद में राजकुमारी पद्मावती की प्रधान सखी बनकर महारानी वासवदत्ता अवन्तिका नाम से रहने लगी। एक दिन माधवी लतामण्डप में पद्मावती और वासवदत्ता कन्दुक-क्रीड़ा कर रही थीं परिहास करती हुई वासवदत्ता ने पद्मावती से कहा—सखी, कन्दुक क्रीड़ा से तुम्हारे ये लाल-लाल हाथ और अधिक लाल हो जाने से पराये से जान पड़ते हैं।

पद्मावती ने हँसकर कहा—आर्ये, परिहास करना तुम्हीं जानती हो !

वासवदत्ता ने कहा, नहीं सखी, भला मैं परिहास क्यों करूँगी। मैं

तो यथार्थ बात ही कह रही हूँ, मुझे तो इस समय तुम्हारे ही सौन्दर्य का विस्तृत साम्राज्य दिखायी पड़ रहा है।

पद्मावती—अच्छा, अच्छा सखी, अब अधिक मत बनाओ ?

वासवदत्ता—अच्छा महासेन की भावी पुत्रवधू, अब मैं चुप हूँ।

पद्मावती—ये महासेन कौन हैं, सखि !

वासवदत्ता—उज्जयिनी के महाराज प्रद्योत हैं, जो अपने पराक्रम से चंड और विशाल सेना के कारण महासेन कहलाते हैं।

इतने में चेटी ने बीच में ही टोक कर कहा—लेकिन हमारी राजकुमारी उज्जैन के राजकुमार के साथ विवाह करना नहीं चाहतीं।

वासवदत्ता—तब फिर किसके साथ विवाह करेंगी ?

चेटी—वत्स देश के सुन्दर, सुकुमार गुणवान् राजा के साथ। लेकिन मैं—सोच रही हूँ कि यदि वह राजा कुरूप हुआ तो ?

यह सुनते ही वासवदत्ता के मुँह से अकस्मात् निकल गया कि नहीं, नहीं वे बहुत ही सुन्दर और गुणवान हैं।

इतने में पद्मावती ने पूछा—आर्ये, तुम्हें कैसे मालूम कि वे बहुत ही सुन्दर और गुणवान हैं।

अब वासवदत्ता को होश आया और पहले तो वह लज्जित हुई फिर सँभल कर बोलीं—सखी, मैंने लोगों के मुँह से ऐसा सुना है।

यह बातचीत खत्म न होने पायी कि धात्री ने आकर पद्मावती से कहा—राजकुमारी की जय हो। आपका विवाह सम्बन्ध निश्चित हो गया।

वासवदत्ता ने पूछा—आर्ये, किसके साथ ?

धात्री ने कहा—वत्स देश के राजा महाराज उदयन के साथ।

वासवदत्ता—हैं तो वे कुशलपूर्वक ?

धात्री—हाँ, यहीं तो ठहरे हुए हैं, उन्होंने राजकुमारी से विवाह करना स्वीकार भी कर लिया है।

वासवदत्ता—क्या उन्होंने स्वयं विवाह का प्रस्ताव रखा है ?

धात्री—नहीं, वे तो यहाँ आए थे किसी और काम से। परन्तु उनका उज्वल कुल, गोत्र, सुन्दर स्वरूप और उनके अमित गुण देख कर महाराज ने स्वयं बिवाह का प्रस्ताव उनके सामने रखते हुए, उनसे विनीत प्रार्थना की है।

यह सुनकर वासवदत्ता मन ही मन सन्तुष्ट हुई और यह सोचने लगी कि आर्यपुत्र निरपराध हैं, इसी बीच एक दूसरी दासी ने आकर निवेदन किया कि राजकुमारी जी, आप शीघ्र रनिवास चलें। महारानीजी बुला रही हैं, क्योंकि आज शुभ मुहूर्त है और आज ही यह मंगल कृत्य पूरा हो जाना चाहिए।

यह सुनते ही वासवदत्ता के चारों ओर अन्धकार छा गया, वह किंकर्त्तव्य विमूढ़-सी चुपचाप पद्मावती के पीछे-पीछे चल दी।

## विवाहोत्सव

महाराज उदयन और पद्मावती के विवाह का समाचार नगर भर में फैल गया। स्त्रियाँ और पुरुष सभी सज-धज कर प्रसन्न मुद्रा में राजप्रासाद की ओर आ रहे थे। घर-घर मंगल गीत गाए जाने लगे। ऐसी कोई स्त्री नहीं थी जो नख-शिख शृङ्गार न किये हो। रनिवास की हर रमणी शोभा, कान्ति, दीप्ति, माधुर्य, धैर्य, प्रगल्भता और औदार्य आदि अयत्नज अलंकारों तथा वाह्य अलंकारों से सुसज्जित वायु प्रकंपित लता की भाँति इधर-उधर डोलती हुई दिखायी पड़ रही थीं। मंगलवाद्यों की ध्वनि और मंगल गानों से राजप्रासाद और राजगृह नगरी मुखरित हो रही थी। केवल वासवदत्ता का ही हृदय सूना था।

पुर-सुन्दरियों के पाद विक्षेप, अंगहारों और महोत्सव के मंगल-कलशों से रनिवास सुसज्जित हो गया था। राजप्रासाद की कुट्टिम भूमि युवतियों के पादालक्तों से लाल हो रही थी। उनके चंचल चक्षुओं की

किरणों से वह दिन कृष्णसार मृगों से परिपूर्ण-सा दिखायी पड़ रहा था। सुन्दरी युवतियों की भुजलताओं के विक्षेप को देखकर ऐसा जान पड़ता था, मानों भुवन मण्डल मृणालवलयों से परिवेष्ठित हो जायगा। शिरीष कुसुम के स्तवकों से अन्तःपुर की धूप शुकपक्षी के रंग में रँगी हुई-सी जान पड़ती थी। इसी समय प्रसाधिका ने राजकुमारी पद्मावती का शृङ्गार करना प्रारम्भ किया। तेरह प्रकार के रत्नों के, नौ प्रकार के सोने के बने हुए आवेध्य, निबन्धनीय, प्रक्षेप्य और आरोप्य ये चार प्रकार के आभूषणों से सारा शरीर सज्जित हो गया। इसके बाद क्षौम, कौशेय, राङ्कव, कार्पास वस्त्रों को पहना कर वेष्ठित, वितत, संघास्य, ग्रन्थिमत्, अवलम्बित, मुक्तक, स्तवक आदि आठ प्रकार की मालाएँ पहनाकर, कस्तूरी, कुंकुम, चन्दन, कर्पूर, अगुरु, कुलक, दन्तसम, पटवास, सहकार तैल, ताम्बूल, अलक्तक, अञ्जन, गोरोचन प्रभृति मण्डन द्रव्यों से और भ्रूघटना, केश रचना, कबरी बन्धन आदि योजनामय से एवं दूर्वा, अशोक पल्लव आदि निवेश्य से सजाकर पद्मावती को साक्षात् रति-सी सुघर बना दिया गया। पद्मावती जैसी अनिन्द्य सुन्दरी की शोभा का अनुप्राणक उसका यौवन ही था, अंग-अंग की विपुलता से सौष्ठव पुलक रहा था।

इस प्रकार वस्त्रालंकारों से सुसज्जित राजकुमारी हँसी-सी मन्द-मन्द गति से जब विवाह मण्डप की ओर चल रही थी तो कटि की मेखला की किंकिणियाँ मधुर शिंजनकारी मंजुल रव करती हुई वेणु निनाद से और झुन-झुनाते हुए नूपुर झल्लरी की ध्वनि के साथ अपूर्व ध्वनि-माधुरी की सृष्टि कर रहे थे। विवाह-काल में जब उनकी माँग में महाराज उदयन अपनी काँपती हुई कमनीय अँगुलियों से सिन्दूर भरा तो उसकी अरुण-कान्ति से मुखमण्डल उद्दीप्त हो उठा और कुण्डलपत्र अरुणायित हो गए। भाँवर पड़ते समय पद्मावती के वासन्ती, चित्रक, कौसुम्भ वस्त्रों का उत्तरीय नृत्य करता हुआ-सा जान पड़ता था। पाणिग्रहण करते

समय लाल-लाल हथेलियों की नरम ज्योति शृंगार-सागर की चटुल-वीचियाँ बन कर मचलने लगीं। उस समय की सुषमा मद को भी उन्मत्त बना रही थी, राग को भी रंग दे रही थी, आनन्द को भी आनन्दित कर रही थी और नृत्य को भी नचा रही थी। ऐसा जान पड़ता था, मानो विवाहोत्सव ही उत्सुक बन रहा है।

इस समय समस्त राजप्रासाद पुलक कर आनन्द की सृष्टि कर रहा था, और वासवदत्ता निराशा, वेदना, चिन्ता की निरग्नि चिता में अन्दर ही अन्दर जल रही थी। उसका चित्त ठिकाने न था इसलिए जाकर वह प्रमद-वन में बैठ गयी। इसी समय दौड़ती हुई अन्तःपुर की एक दासी ढूँढ़ती हुई वहाँ पहुँची और बोली—आर्ये, आप यहाँ बैठी हैं मैं तो आपको कब से ढूँढ़ रही हूँ।

वासवदत्ता—किसलिए सखी।

दासी—इसलिए कि हमारी महारानी का कहना है, कि आप उच्च-कुल की सुहागिन महिला हैं, शीलवती और पतिव्रता हैं, अतः राजकुमारी जी के लिए मंगल-हार आप अपने हाथों से गूँथ दें। यह हैं, पुष्प।

वासवदत्ता ने अपने भावों और दुर्दैव की निर्दयता को हृदय में ही छिपा कर दासी से पूछा—सखि तुमने वर को देखा है।

दासी—सखि, क्या बताऊँ वह मनुष्य नहीं, साक्षात् कामदेव हैं।

वासवदत्ता—बस रहने दो, अधिक वर्णन न करो ?

दासी—यह क्यों, तुम्हीं ने तो पूछा है।

वासवदत्ता --इसलिए कि पर पुरुष का अधिक चिन्तन न करना चाहिए।

दासी—अच्छा आर्ये अवन्तिके, जल्दी से हार गूँथ दें।

वासवदत्ता—लाओ पुष्प।

हाथ में पुष्प लेकर वासवदत्ता ने दासी से पूछा यह कौन-सा पुष्प है।

दासी—सदा सुहागिन।

वासवदत्ता ने मन ही मन सोचा इसे अवश्य गूँथूँगी और अधिक मात्रा में गूँथूँगी। इसके बाद दूसरा पुष्प लेकर पूछा यह कौन पुष्प है?

दासी—यह सौत-सालिनी वनस्पति का पुष्प है।

वासवदत्ता ने कहा—सखि, इसे बाहर करो इसे नहीं गूँथूँगी।

दासी—यह क्यों आर्ये?

वासवदत्ता—इसलिए कि सौत तो कोई है नहीं, इसकी आवश्यकता ही क्या है?

इतने में दूसरी दासी ने आकर कहा, आर्ये माला जल्दी गूँथ दें, जामाता सुहागिनों के साथ कोहबर में प्रवेश कर रहे हैं।

वासवदत्ता—यह लो सखि, तैयार है?

'वाह बहुत सुन्दर' कहकर दोनों दासियाँ माला लेकर चली गयां। वासवदत्ता फिर उसी चिन्ता में लीन हो गयीं।

## माधवी-मण्डप

विवाह के बाद महाराज उदयन राजगृह के राजप्रासाद में ही पद्मावती के साथ रहने लगे। एक दिन वासवदत्ता तथा अन्य सखियों और दासियों के साथ रानी पद्मावती मनोविनोद के लिए प्रमद-वन में गयी थीं। जब एक दासी रानी के लिए शेफालिका के फूल बीन रही थी, तो पद्मावती ने उसे यह कहकर मना कर दिया कि आर्यपुत्र यहाँ आकर इस कुसुम-वृद्धि को देखकर प्यारी शेफालिका की प्रशंसा करेंगे। इसी समय अवसर अच्छा समझ कर वासवदत्ता ने पद्मावती से प्रश्न किया—सखि, महाराज तुम्हें तो बहुत अधिक प्रिय लगते होंगे?

पद्मावती—आर्ये, यह तो मैं नहीं समझ सकी, किन्तु उन्हें बिना

देखे हुए मुझे एक क्षण भी चैन नहीं पड़ती। लेकिन फिर भी मुझे सन्देह है ?

वासवदत्ता—सन्देह किस बात का सखि ?

पद्मावती—यही कि, आर्यपुत्र जैसे मुझे प्रिय हैं, क्या इसी प्रकार वासवदत्ता को भी प्रिय रहे होंगे।

वासवदत्ता—इससे भी अधिक ?

पद्मावती—तुम्हें कैसे मालूम हुआ आर्ये ?

वासवदत्ता—मेरा अनुमान है, वह यह कि वासवदत्ता पर यदि राजा का अधिक प्रेम नहीं होता तो वह अपने माता-पिता से पूछे बिना और उन्हें छोड़कर उनके साथ कभी न जाती।

पद्मावती—हो सकता है ?

इतने में एक सखी ने कहा—राजकुमारी जी, ऐसा सुना जाता है, कि महाराज वीणा बजाने में एक ही हैं। फिर आप उनसे वीणा सिखाने के लिए क्यों नहीं कहतीं ?

पद्मावती—कहा तो था मैंने—

वासवदत्ता—तब उन्होंने क्या कहा ?

पद्मावती—सिर्फ आह भर कर चुप रह गए।

वासवदत्ता—इसका क्या तात्पर्य हो सकता है सखि ?

पद्मावती—यही कि, आर्या वासवदत्ता की याद उन्हें आ गयी।

यह सुन कर वासवदत्ता मन ही मन प्रसन्न हुई और अपने को धन्य समझने लगी। इतने में महाराज उदयन भी सखा वसन्तक के साथ प्रमद वन में आकर वहाँ के लता-पुष्पों की प्रशंसा करते हुए उन्होंने वसन्तक से पूछा, सखे, देवी पद्मावती नहीं दिखायी पड़ रही हैं ? वसन्तक ने कहा—असन पुष्पों से ढके हुए पर्वत तिलक शिला-पटल पर बैठी होंगी। या सप्तच्छद वन में अथवा दारु पर्वत में होंगी और जायँगी कहाँ ? इतने में आकाश में उड़ते हुए सारस पक्षियों को देख कर वसन्तक

ने कहा—सखे। जब तक देवी नहीं आतीं तब तक इस सारस पंक्ति को ही देखिए ? इतने में सखियों सहित घूमती हुई पद्मावती भी उधर ही जा रही थीं। एक दासी ने कुछ दूर बैठे हुए वसन्तक के साथ महाराज को देख कर रानी पद्मावती से कहा—वे हैं आर्यपुत्र।

पद्मावती महाराज के समीप जाना चाहती थी। किन्तु कुछ सोच कर वासवदत्ता से बोली, आर्ये अवन्तिके, मैं तुम्हें छोड़ कर महाराज के पास नहीं जाना चाहती, चलो हम तुम माधवी मण्डप में बैठें।

उदयन और वसन्तक टहलते हुए जब उस स्थान पर पहुँचे जहाँ से पद्मावती वासवदत्ता को साथ लेकर माधवी-मण्डप की ओर गयी थीं। वहाँ पहुँच कर वसन्तक ने उदयन से कहा, सखे, मालूम पड़ता है, देवी पद्मावती अभी-अभी इधर से होकर माधवी मण्डप की ओर गयी हैं। उदयन ने पूछा—यह कैसे जाना तुमने ? वसन्तक ने कहा—यह देखिए शेफालिका के फूल अभी-अभी चुने गए हैं। उदयन ने कहा—मित्र, कहते तो ठीक हो। अच्छा आओ, यहां बैठ कर उनकी प्रतीक्षा करें। बैठते ही वसन्तक यह कहता हुआ उठ खड़ा हुआ—अरे बापरे! शरद का तीक्ष्ण आतप सहा नहीं जाता। चलिए माधवी-मण्डप में चलें।

माधवी-मण्डप में बैठी हुई पद्मावती और उनकी सखियाँ यह सब सुन रही थीं। जब उन्होंने देखा, कि वसन्तक मानेगा नहीं महाराज को यहाँ लाना ही चाहता है, तब पद्मावती ने कहा वसन्तक तो नाकों दम किये है, एक जगह बैठने भी न देगा, अब क्या करें—कहाँ जायँ ?

एक सखी ने कहा—राजकुमारी जी मैं भौंरों से लदी हुई माधवी-लता की शाखाओं को हिलाती हूँ, उड़ कर भौंरे उन्हें द्वार पर ही रोंक लेंगे।

पद्मावती—अच्छी बात है, ऐसा ही करो।

तब सखी ने माधवी लता की डाल पकड़ कर उसे ज्यों ही हिलाया

तो भौंरे उड़-उड़कर प्रवेश द्वार पर मँडराने लगे। उन्हें देख कर वसन्तक घबरा गया और लौट कर राजा के साथ फिर शिला पर जा बैठा।

महाराज उदयन को देख कर वासवदत्ता के आँखों में आँसू बहने लग गए थे। जब एक सखी ने पद्मावती को उनके बहते हुए आँसुओं को दिखाया तो वासवदत्ता ने बात बना कर कहा—भौंरों के उड़ने से कुसुम-पराग मेरी आँखों में पड़ गया, जिससे आँसू आ गए हैं।

शिला पर बैठे हुए उदयन से वसन्तक ने कहा, मित्र, एक बात पूछना चाहता हूँ।

उदयन—बड़ी खुशी से पूछो?

वसन्तक—आपको वासवदत्ता अधिक प्रिय थीं या पद्मावती अधिक प्रिय हैं?

उदयन—सखे वसन्तक, तुम्हारा यह प्रश्न चालाकी से भरा हुआ है। इसका उत्तर मैं नहीं दे सकूँगा।

महाराज की यह बात सुन कर पद्मावती ने वासवदत्ता से धीरे से कहा—

आर्यपुत्र ने सब कुछ तो कह दिया पर मूर्ख वसन्तक जब समझे।

वसन्तक—सखे, मैं शपथ खाता हूँ, यह बात किसी से भी न कहूँगा।

उदयन—लेकिन मुझे साहस नहीं कि मैं कुछ कहूँ।

पद्मावती ने फिर वासवदत्ता से कहा—देखो वसन्तक कितना मूर्ख है। इतने पर भी नहीं समझ पाता।

वसन्तक के बहुत आग्रह करने पर लाचार उदयन को कहना पड़ा कि पद्मावती में रूप, यौवन, गुण, शील सब कुछ है, वह मुझे अधिक प्रिय है लेकिन देवी वासवदत्ता को मैं नहीं भूल सका हूँ।

माधवी मण्डप के अन्दर बैठी हुई देवी वासवदत्ता मन ही मन अपने को धन्य मानती हुई पुलकित हो रही थीं। परन्तु दासी को राजा की बात अच्छी नहीं लगी, उसने पद्मावती से कहा--महाराज कितने अनुदार हैं। पद्मावती ने कहा—ऐसा मत कह। आर्य पुत्र की यह सबसे बड़ी उदारता है, कि देवी वासवदत्ता को वह अभी तक भूल नहीं सके हैं।

वासवदत्ता—भद्रे, यह बात आपके उच्चवंश की परम्परा के अनुसार है। महाराज उदयन ने अब वसन्तक से पूछा कि अच्छा तुम बताओ तुम्हें कौन अधिक प्रिय है।

वसन्तक ने कहा—देवी पद्मावती अनुपम गुणों से युक्त हैं, किन्तु देवी वासवदत्ता मुझे अधिक प्रिय हैं, क्यों कि वे स्निग्ध-मधुर भोजन लेकर मुझे बराबर ढूँढ़ा करती थीं।

उदयन—अच्छा ये सब बातें मैं महारानी वासवदत्ता से कहूँगा।

वसन्तक—हाय, हाय, अब वह हैं कहाँ, वे तो कब की मर चुकी हैं।

यह सुनते ही महाराज उदयन की आँखों से चुपचाप आँसू बहने लगे। उनका मुख सूख गया। यह देख कर मुँह धोने के लिए पानी लेने वसन्तक चला गया। पद्मावती ने वासवदत्ता से कहा, कि आर्यें, अवसर ठीक है यहाँ से निकल चलने का। वसन्तक है नहीं और महाराज की आँखों में पानी भरा होने से वे देख नहीं सकेंगे। लेकिन वासवदत्ता ने निषेध करते हुए कहा—आर्यें, ऐसे अवसर पर आर्य पुत्र के पास आप का रहना उचित है। मैं अकेली जा रही हूँ। तुम महाराज के पास जाकर उनको सान्त्वना प्रदान करो—यह कह कर वासवदत्ता धीरे से निकल गयी और पद्मावती ज्यों ही महाराज के पास पहुँची कि वसन्तक पानी लेकर आ गया, उसे देख कर पद्मावती ने कहा---आर्य वसन्तक यह क्या?

वसन्तक ने कहा—महाराज की आँखों में पुष्प-पराग उड़ कर पड़ गया है, इसलिए आँसू आ जाने से मुँह धोने के लिए पानी लाया हूँ।

वसन्तक के हाथ से जलपात्र लेकर पद्मावती महाराज के सम्मुख खड़ी होकर बोली—आर्य पुत्र की जय हो—मुँह धोने के लिए पानी तैयार है। उदयन ने मुँह धोकर पद्मावती को बैठाया। थोड़ी देर तक मनोविनोद होता रहा। वसन्तक ने याद दिलाते हुए कहा कि मित्र, आज अपराह्न में मगधराज अपने बन्धु-बांधवों से आपका परिचय कराएँगे। अतः वहाँ चलना चाहिए।

'हाँ ठीक याद दिलायी तुमने वसन्तक, ऐसा कह कर महाराज उठ कर राज-प्रासाद की ओर चले।

## स्वप्न में मिलन

एक दिन पद्मावती की एक सहचरी ने मधुरिका से आकुल स्वर में कहा—मधुरिका तुम जाकर आर्या अवन्तिका को यह कह कर बुला लाओ, कि देवी के शिर में दर्द है। वह सुनते ही दौड़ी चली आएँगी।

मधुरिका—लेकिन वह आकर क्या करेंगी ?

पद्मिनी—वे अपनी मधुर भाषा से मधुर बातें करके राजकुमारी का चित्त प्रसन्न करेंगी।

मधुरिका—अच्छा जाती हूँ। कहाँ भेजूँगी।

पद्मिनी—समुद्रगृह में बता देना कि उनकी शय्या बिछी है। तुम वहाँ जाओ और मैं भी वसन्तक के द्वारा आर्यपुत्र को खबर देती हूँ।

मधुरिका से समाचार पाकर वसन्तक ने महाराज उदयन से बताया और तुरन्त समुद्रगृह की ओर चलने के लिए उनसे कहा। वसन्तक के साथ उदयन समुद्रगृह पहुँचे तो वहाँ शय्या सूनी पड़ी थी। वसन्तक ने कहा—मालूम होता है, देवी आकर चली गयीं।

उदयन—तुम निरा पोंगा ब्राह्मण हो, अभी तक वे यहाँ आयी ही नहीं।

वसन्तक—यह आपको कैसे मालूम ?

उदयन—शय्या के विस्तर की ताजगी देख कर तुम्हें नहीं जान पड़ता कि अभी यहाँ किसी के शरीर का स्पर्श भी नहीं हुआ है, देवी के मनोविनोद के लिए कोई सामग्री भी नहीं है।

वसन्तक—हाँ बात तो है सही, तब यहीं बैठ कर प्रतीक्षा की जाय।

उदयन ने चारपाई पर लेट कर वसन्तक से कहा, मित्र, मुझे नींद आ रही है कोई कहानी सुनाओ ?

वसन्तक—अच्छा हुँकारी भरिएगा। कहानी सुनाता हूँ सुनो—उज्जयिनी नाम की एक नगरी है।

उदयन ने दुखित होकर कहा—फिर तुमने उज्जयिनी की याद दिलायी क्या कोई दूसरी कहानी ही नहीं जानते हो ?

वसन्तक—अच्छा तो दूसरी सुनिये—ब्रह्मदत्त नाम के नगर में काम्पिल्य नाम का एक राजा रहता था।

उदयन—अरे मूर्ख, क्या कह रहा है, उल्टा पुल्टा। ऐसे कह कि काम्पिल्य नाम के नगर में ब्रह्मदत्त नाम का एक राजा था।

वसन्तक—अच्छा तो जरा ठहरिए मित्र, इसे मैं घोखलूँ—यह कह कर वह 'काम्पिल्य नगर', 'ब्रह्मदत्त राजा', 'काम्पिल्य नगर', 'ब्रह्मदत्त राजा' को बार-बार रटने लगा। इतने में महाराज उदयन को नींद आगयी और वह सो गये। वसन्तक ने देखा यहाँ ठंडक लग रही है, वह ओढ़ने के लिए चादर लेने चला गया। इतने में अवन्तिका के वेष में रहती हुई वासवदत्ता वहीं आ गयीं। उन्होंने टिमटिमाते हुए प्रकाश में महाराज को पहचाना नहीं और उन्हें पद्मावती समझ कर शय्या के पास बैठ गयीं, लेकिन बाद में उन्होंने सोचा कि दूर बैठने से स्नेह की कमी का अभास होता है, शय्या का एक भाग खाली पड़ा भी है, शायद प्रिय सखी मेरे लिए ही खाली कर सो गयी है। आज यहाँ आने से मेरे हृदय में

भी प्रेम की उमंगें उमड़ रही हैं, इसलिए इन्हीं के पास लेट जाऊँ—ऐसा सोच कर वह महाराज उदयन के पास लेट गयीं।

इतने में सोते हुए महाराज उदयन ने स्वप्न में कहा हाय, वासवदत्ता। यह सुनते ही वासवदत्ता चौंक पड़ी और समझ गयी कि यह पद्मावती नहीं बल्कि आर्य पुत्र हैं। वह पशोपेश में पड़ गयीं, कि महाराज ने मुझे देख लिया है। आर्य यौगन्धरायण क्या कहेंगे, उनके किये-कराये पर पानी फिर गया। इतने में फिर उदयन ने स्वप्न ही में कहा हा अवन्ती की राजकुमारी बोलो, बोलो।

अब वासवदत्ता को विश्वास हो गया, कि महाराज सोये हुए हैं और स्वप्न देख रहे हैं। पहले वह वहाँ से भागना चाहती थीं, फिर चिर-वियोग के बाद स्वप्न-मिलन का लाभ सोच कर वह रुक गयीं और अतृप्त नेत्रों से उन्हें निहारने लगीं।

उदयन ने फिर कहा -देवि, तुम कुपित हो, बोलती क्यों नहीं हो।

वासवदत्ता ने कहा—नाथ, बोल तो रहीं हूँ। मैं कुपित नहीं; दुखित हूँ।

उदयन—फिर तुम्हारे अंगों में अलंकार क्यों नहीं हैं?

वासवदत्ता—क्या इतने पर भी मेरे शरीर पर आप अलङ्कार ढूँढ़ रहे हैं।

उदयन—क्या यहाँ भी तुम्हें उस विरंचिका की याद आ रही है, जिससे मैंने तुमसे छिपा कर प्रेम किया था।

वासवदत्ता—मुझे तो नहीं, पर आपको उसका अब भी ध्यान बना हुआ है। अब मैं नहीं बोलूँगी।

उदयन—नहीं देवि, कुपित न हो बोलो, तुम्हारे हाथ जोड़ता हूँ।

इतना कह कर सोते हुए उदयन ने आलिंगन के लिए हाथ बढ़ाया, उनका हाथ शय्या के नीचे लटक गया। वासवदत्ता ने सोचा कि हाथ उठा कर शय्या पर रख दूँ और यहाँ से चली जाऊँ, कहीं कोई देख न

ले। उसने ज्यों ही हाथ पकड़ कर रखना चाहा, कि उदयन की नींद खुल गयी। वह 'वासवदत्ता, ठहरो ठहरो' कह कर अधखुली आँखों से चारपाई से उठ कर दरवाजे की तरफ दौड़े किन्तु चौखट का धक्का लग जाने से वहीं रुक गए और वासवदत्ता भाग गयी। इतने ही में वसन्तक वहाँ पहुँच गया। उदयन ने गद्गद् होकर कहा, मित्र, देवी वासवदत्ता अभी-अभी मुझे जगाकर यहाँ से भाग गयीं। रुमण्वान् ने मुझे धोखा दिया है, देवी जली नहीं, मरी नहीं।

वसन्तक—सखे, शान्त हो जाओ, यह स्वप्न था, सोते समय मैंने उज्जयिनी का नाम लिया था, वही याद बनी थी। यह केवल भ्रम-मात्र है।

उदयन—मित्र, यदि मेरा यह भ्रम है तो भी मैं इसे सदा अपने साथ चाहता हूँ। लेकिन मेरा हृदय गवाही दे रहा है, कि यह भ्रम नहीं बल्कि सत्य है।

वसन्तक—मित्र, इस नगर में अवन्ति सुन्दरी नाम की एक यक्षिणी भी रहती है, संभव है, वही आपको दिखायी पड़ी हो।

उदयन—नहीं सखे, जगने पर मैंने शीलवती देवी वासवदत्ता को ही देखा है।

इतने में कंचुकी ने आकर विनय की, कि महाराज की जय हो! मगध-नरेश महाराज दर्शक ने कहलाया है, कि आपके सेनापति रुमण्वान् एक विशाल वाहिनी लेकर आपके शत्रु आरुणि को पराजित करने के लिए यहाँ आ गए हैं। हमारी भी चतुरंगिनी सेना तैयार है, अतः आप भी तैयार हो जायँ। युद्ध-क्षेत्र में स्वयं उपस्थित रह कर शत्रु का नाश कर अपना राज्य पुनः प्राप्त करें।

यह सुनते ही उदयन आवेश में आकर उठ खड़े हुए और 'मैं तैयार हूँ' यह कहते हुए युद्ध-क्षेत्र के लिए प्रस्थान किया।

## अन्तःपुर का कौशल

आरुणि को मार कर महाराज उदयन ने वत्सदेश को पुनः प्राप्त किया और राजधानी कौशाम्बी में आकर वह रानी पद्मावती के साथ रहने लगे।

एक दिन उज्जयिनी के महाराज महासेन का कंचुकी रैभ्यसगोत्र और महारानी अंगारवती की भेजी हुई धात्री वसुन्धरा ने कौशाम्बी के राज-प्रासाद के स्वर्ण-तोरण द्वार पर पहुँच कर वहाँ की प्रतीहारी विजया को अपना परिचय देते हुए कहा—हमारे आगमन की सूचना महाराज कौशाम्बी-नरेश को दें।

प्रतीहारी—इस समय महाराज से कुछ भी निवेदन करना मैं उचित नहीं समझती।

कंचुकी—आखिर कारण क्या है ?

प्रतीहारी—आज शय्या सुख-प्रासाद में किसी को वीणा बजाते हुए महाराज ने उसकी ध्वनि को पहचान लिया कि यह तो देवी वासवदत्ता की घोषवती वीणा का स्वर है। महाराज ने उस वीणा बजाने वाले से पूछा तो उसने बताया कि नर्मदा नदी के तटवर्ती एक झुरमुट में पड़ी हुई यह वीणा मुझे मिली है। देव, आप चाहें तो ले सकते हैं।

महाराज ने उस वीणा को लेकर हृदय से लगा लिया और देवी वासवदत्ता का स्मरण कर विविध विलाप करते हुए वह मूर्च्छित हो गए। इस समय उन्हें कुछ होश तो आया है, पर दुःखी बहुत हैं, अतः मैं उनसे कुछ भी निवेदन करना उचित नहीं समझती।

कंचुकी—लेकिन तुम जाकर महाराज से निवेदन करो, कि हम जो समाचार ले आए हैं वह भी उन्हीं से संबंधित है।

इतने में महाराज शय्या सुख-प्रासाद से नीचे उतरते हुए दिखायी पड़े, प्रतीहारी विजया ने कंचुकी से कहा कि मैं यहीं महाराज से आप के

संबंध में निवेदन किये देती हूँ। लेकिन अब भी महाराज बहुत दुःखित थे, घोषवती वीणा को हृदय से चिपकाये प्रलाप कर रहे थे। कुछ देर बाद उन्होंने वसन्तक को आज्ञा दी, कि किसी योग्य शिल्पी से इस वीणा का जीर्णोद्धार करा लाओ। वसन्तक के चले जाने पर विजया ने अवन्ती से आए हुए आर्य रैभ्यसगोत्र और आर्यावसुन्धरा का आगमन महाराज से निवेदन किया तो महाराज ने कहा कि पहले देवी पद्मावती को बुला लाओ।

जो आज्ञा कह कर प्रतीहारी वहाँ से चली गयी और थोड़ी देर में ही देवी पद्मावती से जाकर निवेदन किया कि आर्य पुत्र आपको स्मरण कर रहे हैं।

प्रतीहारी विजया के साथ देवी पद्मावती तत्काल महाराज के निकट पहुँचीं। उन्हें देख कर महाराज उदयन ने कहा—देवि, तुमने भी सुना होगा, महाराज महासेन के यहाँ से कंचुकी रैभ्यसगोत्र और देवी वासवदत्ता की धात्री आर्या वसुन्धरा यहाँ आयी हुई हैं।

पद्मावती—आर्यपुत्र, अपने बन्धु-बान्धवों और माता-पिता के कुशल समाचार जानने के लिए मुझे बड़ी उत्सुकता है।

उदयन, देवि, तुमने अपने उच्च कुल और शील के अनुरूप ही बात कही है। देवी वासवदत्ता के माता-पिता तुम्हारे भी माता-पिता हैं, उनके भाई पालक, गोपालक तुम्हारे भी भाई हैं। अच्छा आओ यहीं बैठ जाओ, मैं यहीं पर उन्हें बुलाता हूँ।

पद्मावती—लेकिन देव, मुझे साथ बैठे हुए देख कर कहीं उन्हें इस बात का दुःख न हो जाय कि महाराज़ ने फिर से विवाह कर लिया है।

उदयन—नहीं देवि, यह बात न होगी। तुम यहीं बैठो। मैं तो अपराधी पुत्र के समान महाराज और महारानी के सामने लज्जित हूँ, क्योंकि उनकी कन्या की रक्षा कर सकने में मैं असमर्थ रहा। यही दुःख मुझे विकल बनाया करता है।

महाराज की आज्ञा पाते ही प्रतीहारी विजया कंचुकी रैभ्यस गोत्र और धात्री वसुन्धरा को बुला लायी। दोनों ने आते ही कहा—महाराज की जय हो !

आसन से उठ कर महाराज उदयन ने उनका स्वागत करते हुए कहा—आर्य, अवन्ती नरेश महाराज महासेन की मेरे लिए क्या आज्ञा है ?

कंचुकी—यह शिष्टाचार वैदेही पुत्र के योग्य ही है। आर्य आसन पर विराजें, मैं सन्देश सुना रहा हूँ।

'जैसी महाराज महासेन की आज्ञा' कहते हुए महाराज उदयन आसन पर बैठ गए।

कंचुकी ने निवेदन किया—शत्रुओं को पराजित कर पुनः वत्स-देश प्राप्त कर लेने पर आपके पराक्रम और समृद्धि की महाराज अवन्ति-नरेश प्रशंसा करते हुए बहुत ही प्रसन्न हैं। वसुन्धरा आप जैसे वीर पुरुषों के भोगने ही योग्य है।

उदयन—यह सब महाराज महासेन की उदारता और कृपा का फल है। उन्होंने सदा मुझ पर पुत्रवत् स्नेह रखा है। दुःख है, कि मैं उनकी कन्या की रक्षा न कर सका—इसलिए उनके सामने लज्जित हूँ। लेकिन उनकी महानता और उदारता यह रही, कि इन सब बातों का ख्याल न कर मुझे पुनः राज्य प्राप्त कराने में पूरी सैन्य सहायता देकर कौशाम्बी की राजगद्दी पर पुनः बैठने का उन्होंने अधिकारी बनाया। मैं उनके अनन्त उपकारों से उपकृत हूँ।

कंचुकी—आपने अपने कुल के अनुरूप यह बात कही है—आर्य, अब महारानी अंगारवती का संदेश आर्या वसुन्धरा से सुनने का कष्ट करें।

वसुन्धरा—वे कुशलपूर्वक हैं और आप सब का कुशल चाहती हैं। यह सुनते ही उदयन की आँखों से आँसू झरने लगे। आर्या वसुन्धरा ने

उन्हें सान्त्वना देते हुए कहा—महारानी ने कहा है, कि मेरी वासवदत्ता तो अब नहीं रही पर पद्मावती ही अब मेरे लिए वासवदत्ता है तथा जैसे पालक, गोपालक मेरे दो पुत्र हैं उसी प्रकार तीसरे एक आप भी हैं।

पद्मावती और उदयन दोनों के हृदय और नेत्र आर्द्र हो रहे थे, धात्री ने आगे कहा— महारानी ने कहा है, कि हमने पुत्र समझ कर ही आपको उज्जयिनी बुला कर बिना अग्नि की साक्षी किये ही वीणा सिखाने के बहाने वासवदत्ता को सौंप दिया था। आपकी चंचलता के कारण विधिवत् विवाह संस्कार सम्पन्न न होने के कारण हमने आपकी और वासवदत्ता की प्रतिमूर्तियाँ चित्रों में बनवा कर विवाह-कार्य सम्पन्न किया था।

इतना कहकर धात्री ने चित्रपट उदयन के सामने रख कर कहा— यह वही चित्रपट है। महारानी ने इसे इसलिए भेजा है, कि चित्र में खचित देवी वासवदत्ता को देख कर आपके खिन्न मन को कुछ शान्ति मिल सके। चित्रपट को हाथ में लेकर महाराज उदयन खिन्न मन से उसे देखने लगे। पद्मावती ने निवेदन किया कि आर्यपुत्र, चित्राङ्कित गुरुजनों के दर्शन मैं भी करना चाहती हूँ।

महाराज ने पद्मावती के हाथों में चित्रपट रख दिया। चित्रपट में वासवदत्ता का चित्र देखकर पद्मावती विस्मित-सी कुछ सोचने लगी। अपना कुतूहल शान्त करने के लिए उन्होंने महाराज से पूछा—आर्यपुत्र, क्या यह आकृति सचमुच आर्य की ही है।

उदयन—हाँ देवि, यह आकृति साक्षात् उन्हीं का प्रतिबिम्ब है। लेकिन आप विस्मयान्वित क्यों हैं?

पद्मावती—आर्यपुत्र, इसी चित्र के अनुरूप एक नारीरत्न यहीं है।

उदयन—यहीं है, यह कैसे?

पद्मावती—देव, मेरे विवाह से पूर्व एक ब्राह्मण इस चित्र के अनुरूप एक देवी को मेरे पास यह कहकर धरोहर रख गया था, कि इसका पति

विदेश गया है, यह मेरी बहिन है। जब तक इसके पति न आयें आप अपने संरक्षण में इसे रखें। तब से वे मेरे साथ रह रही हैं। पर-पुरुष को कभी देखती भी नहीं हैं।

ब्राह्मण की बहिन सुन कर उदयन चुप रहे और मन ही मन कहने लगे कि संसार में अनेक तुल्याकृतियाँ देखी जाती हैं। हो सकता है, यह भी ब्राह्मण-पत्नी वासवदत्ता से मिलती-जुलती हो।

इतने में प्रतीहारी ने आकर निवेदन किया—महाराज की जय हो। उज्जयिनी से एक ब्राह्मण आया है, और कह रहा है, कि देवी पद्मावती के पास धरोहर रखी हुई अपनी बहिन को लेने आया हूँ।

महाराज ने उस ब्राह्मण को अन्दर लाने की आज्ञा दी और देवी पद्मावती से कहा कि तुम भी जाकर उनकी बहिन को लेकर आ जाओ?

अन्दर प्रवेश करते ही ब्राह्मण ने उदयन के सामने 'महाराज की जय हो' कहकर उनका अभिवादन किया।

उदयन को उसका स्वर कुछ पूर्व-परिचित-सा लगा। उन्होंने पूछा—क्या आपने ही अपनी बहिन को देवी के संरक्षण में रखा है?

ब्राह्मण ने कहा—हाँ देव!

इतने में पद्मावती भी अपने साथ अवन्तिका को लेकर उपस्थित हुई और बोली—आर्यपुत्र, यही थाती है, जिसे द्विजदेव ने मेरे पास रखी है।

उदयन—देवि, थाती सदा साक्षियों के समक्ष लौटायी जानी चाहिए। आर्य रैभ्यस गोत्र और आर्या वसुन्धरा सौभाग्य से यहीं उपस्थित हैं। इन्हीं के सामने यह कार्य सम्पन्न हो।

अवन्तिका को देखते ही धात्री वसुन्धरा चिल्ला उठी—अरे यह तो राजकुमारी वासवदत्ता हैं।

ब्राह्मण—जी नहीं, मेरी बहिन है।

उदयन—परन्तु आर्या तो इन्हें महासेन की पुत्री बतला रही हैं।

ब्राह्मण—देव, आप भरतवंश के भूषण हैं। विज्ञ विद्वान् हैं। आपके समक्ष अन्याय और अनीति न होनी चाहिए।

उदयन—तब तो मुझे स्वीकृति दें, कि मैं आर्या की मुखाकृति देखूँ। इतने में ब्राह्मण वेशधारी यौगन्धरायण ने अपने असली रूप में प्रकट होकर कहा 'महाराज की जय हो'।

वासवदत्ता ने भी कहा—आर्यपुत्र की जय हो।

यह देखकर उदयन हर्ष और विस्मय में डूब गए। उनकी समझ में न आ रहा था कि यह स्वप्न है या प्रत्यक्ष।

उनके आश्चर्य को दूर करने के लिए यौगन्धरायण ने यह कह कर कि देव, मैंने देवी को छिपाकर बहुत बड़ा अपराध किया है, मुझे क्षमा करें और वह उदयन के चरणों पर गिर पड़ा।

यौगन्धरायण को उठाकर महाराज ने हृदय से लगा कर कहा—आर्य, यह तुम्हारा अपराध नहीं—कौशल है।

यौगन्धरायण—देव, मैं तो तुच्छ सेवक हूँ।

सब बातें समझ कर देवी पद्मावती महारानी वासवदत्ता के चरणों पर गिर कर उनसे क्षमा माँगने लगीं।

उन्हें उठा कर हृदय से लगाती हुई वासवदत्ता बोलीं—बहिन, तुम शीलवती, सौभाग्यवती हो, तुम्हें अपराधी होने का कलंक स्पर्श भी नहीं कर सकता है।

उदयन—आर्य यौगन्धरायण, अन्तःपुर के इस कौशल की रचना का रहस्य क्या है?

यौगन्धरायण—केवल कौशाम्बी की रक्षा।

उदयन—लेकिन देवी पद्मावती के पास ले जाकर आर्या को क्यों रखा?

यौगन्धरायण—इसीलिए कि भद्रादि सिद्ध ज्योतिषियों ने मुझसे

बताया था कि राजकुमारी पद्मावती कौशाम्बी के अन्तःपुर की रानी होंगी।

उदयन—तो क्या रुमण्वान् को भी ये सब बातें ज्ञात थीं ?

यौगन्धरायण—देव, प्रायः सभी मुख्य अमात्य इस बात को जानते थे।

उदयन—तब तो रुमण्वान् भी भारी शठ है।

यौगन्धरायण—देव, अब विलम्ब न करें आर्य रैभ्यस गोत्र और आर्या वसुन्धरा को बिदा करें, जिससे महाराज महासेन और महारानी अंगारवती को भी यह शुभ समाचार शीघ्र मिल सके।

उदयन—नहीं आर्य, देवी पद्मावती और देवी वासवदत्ता को साथ लेकर हम सब लोग अवन्तिका चलें।

यौगन्धरायण—जो आज्ञा।

और कौशाम्बी का अन्तःपुर 'महाराज की जय हो' की प्रतिध्वनि से गूँज उठा।

# कौशाम्बी के अन्तःपुर में कपट कला-विलास

अंगराज दृढ़वर्मा की परमसुन्दरी कन्या का नाम प्रियदर्शिका था। वह वत्सराज महाराज उदयन की पटरानी वासवदत्ता की मौसेरी बहन थी।

प्रियदर्शिका के रूप, गुण, यौवन और सौन्दर्य की प्रसिद्धि सुनकर कलिंगराज के मुँह में पानी आ गया। उन्होंने दृढ़वर्मा के पास विवाह का प्रस्ताव भेजा। कलिंगराज की ऐसी धृष्टता अंगराज दृढ़वर्मा को असह्य प्रतीत हुई। उन्होंने कहला भेजा कि साक्षात् कमला के समान प्रियदर्शिका पाण्डव वंशधर चक्रवर्ती उदयन की राजमहिषी बनेगी। कलिंगराज जमीन पर रहते हुए आकाश-कुसुमों के चयन करने का व्यर्थ प्रयास न करें।

इस अपमानजनक सन्देश को सुनकर कलिंगराज क्रोध से भस्मीभूत हो गये और उन्होंने एक विशाल वाहिनी लेकर अङ्गराज पर चढ़ाई कर दी। युद्ध में अङ्गराज पराजित हुए और बन्दी बना लिये गये।

रनिवास का वृद्ध कंचुकी विनयवसु अवसर पाकर प्रियदर्शिका को लेकर इस आशय से भाग निकला कि इसे कौशाम्बी में पहुँचा कर महाराज की अभिलाषा सफल करूँ। मार्ग में वह अंगराज के मित्र आरण्यक देश के राजा विन्ध्यकेतु के यहाँ ठहर गया।

इसी बीच वत्सराज उदयन के सेनानी विजयसेन ने विन्ध्यकेतु पर आक्रमण कर दिया। विन्ध्यकेतु सपरिवार मारा गया। प्रियर्शिका का कुछ पता न चला। निराश और दुःखी होकर उसका कंचुकी विनयवसु अंगदेश लौट गया।

आरण्यक पर विजय का सन्देश और विन्ध्यकेतु की वीरगति का समाचार सुनकर कौशाम्बी नरेश उदयन बहुत दुखी हुए। उन्होंने अपने महामात्य से कहा—विन्ध्यकेतु ने वीरोचित मार्ग का अनुसरण किया है। उसकी मृत्यु और पराजय सुनकर मैं दुःखी और लज्जित हो रहा हूँ। मेरा जी चाहता है, कि उसकी यदि कोई सन्तान हो तो उसे यथोचित सम्मान और पुरस्कार देकर मैं अपने दुःख के भार को हल्का करूँ।

महासेनानी विजयसेन ने कहा—परमभट्टारक, मुझे यह नहीं ज्ञात है, कि विन्ध्यकेतु के कोई सन्तान है या नहीं। किन्तु अन्तःपुर में एक पालिता कन्या मिली है जो कुलीन परिवार की जान पड़ती है। वह बाहर बहिर्द्वार पर खड़ी है—'तदत्र देवः प्रमाणम्।'

प्रतीहारी यशोधरा की ओर देखकर वत्सराज उदयन ने कहा—तुम इस बलिका को देवी वासवदत्ता के पास ले जाकर उनसे कहो कि इसे धरोहर समझ कर इसकी रक्षा, प्रसन्नता और शिक्षा-दीक्षा का भार अपने ऊपर लें और अपनी छोटी बहिन समझ कर इसके साथ समानता का व्यवहार करें। हाँ, इतना और कह देना, कि जब देवी इसका विवाह करना चाहें तब मुझसे कहें मैं अनुकूल सुपात्र वर ढूंढ़कर इसका विवाह कर दूँगा।

प्रियदर्शिका यशोधरा के साथ अन्तःपुर गई, वहाँ उसने अपना कुछ भी परिचय नहीं दिया। वह आरण्यक देश से आयी हुई थी, इतना जानकर अन्तःपुर वासिनी महिलाओं ने उसे 'आरण्यका' कहकर पुकारना आरंभ कर दिया।

उदयन को जब यह समाचार मिला कि अङ्गराज दृढ़वर्मा अपनी सर्वगुण सम्पन्न कुमारी का विवाह मुझसे करना चाहते थे इसी से खिसिया कर कलिंगराज ने उन्हें पराजित कर बन्दी बना लिया है तो शीघ्र ही विजयसेन को कलिंग पर चढ़ाई कर दृढ़वर्मा को मुक्त कराने का आदेश दिया।

अपनी परिचारिका इन्दीवरिका से देवी वासवदत्ता ने कहा—'देखो इन्दु, आज मैं व्रत करूँगी इसलिए तुम अन्तःपुर के उद्यान में जाकर जल्दी से निर्गुण्डी के फूलों की माला बना लाओ। और हाँ, आरण्यका को भी साथ लेती जाओ। यह गृह दीर्घिका के उत्तम कमल पुष्प तोड़ लायेगी इसका भी मन बहल जायगा।

इन्दीवरिका और आरण्यका जिस समय कमल पुष्प तोड़ने के लिए उद्यान-दीर्घिका में उतर रही थीं उसी समय उद्यान में टहलते हुए वसन्तक की दृष्टि उन दोनों पर पड़ी। वह दौड़कर महाराज उदयन के पास गया और बोला—'वयस्य, उद्यान की देवियाँ मानवी रूप धर कर बापी में उतर रही हैं—देखिए, देखिए।'

राजा ने देखा तो सचमुच दीर्घिका के पद्मवन में पद्मों की रानी प्रवेश कर रही है। आश्चर्यचकित हो महाराज उदयन ने विदूषक वसन्तक की ओर देख कर कहा—'ऐसा जान पड़ता है, मानो साक्षात् कमला कमलवन में आयी है।' जरा आगे बढ़कर देखने को उत्सुक उदयन की कमर पकड़ कर वसन्तक बोला—'अरे बाप रे बाप, इसके साथ तो देवी वासवदत्ता की परिचारिका इन्दुवरिका है। कहीं देख लेगी तो महारानी से बिना कहे मानेगी नहीं, यह बड़ी ही मुखर है। मित्र, रुक जाओ, नहीं तो अनर्थ हो जायगा।'

वसन्तक की यह बात सुनकर राजा सहम गये, किन्तु रूप दर्शन का लोभ न संवरण कर एक झाड़ी में छिपकर सौन्दर्य-मधु का पान करने लगे। आरण्यका कमल तोड़ने लगी और इन्दीवरिका एक कमल पत्र तोड़ कर बोली—आरण्यका तुम कमल पुष्प तोड़ो तब तक मैं इस कमलपत्र में निर्गुण्डी-पुष्प तोड़ लाऊँ। नहीं सखी मुझे अकेली छोड़ कर मत जाओ, मुझसे अकेले नहीं रहा जायगा, आरण्यका ने कहा। इन्दीवरिका हँसकर बोली—'आज यहाँ तुमसे अकेले नहीं रहा जायगा लेकिन जब विवाह हो जायगा तब?'

यह सुनकर भविष्यत् की कल्पना से वह काँप उठी और सोचने लगी, 'पिता जी तो मुझे महाराज उदयन के साथ व्याहना चाहते थे, इसीलिए आपत्तियाँ मोल लीं। हाय, अब मैं अनाथ की भाँति न जाने किसे सौंप दी जाऊँगी।' किन्तु क्षण-भर सोचने के बाद वह प्रकृतिस्थ होकर बोली—'चलो, हटो तुम्हारी यह सब बातें मुझे नहीं सुहातीं।'

× × ×

हँसती हुई इन्दीवरिका निर्गुण्डीवन में चली गयी और अब उदयन निःशंक होकर एकटक आरण्यका का अनिन्द्य सौन्दर्य देखने लगे, उन्हें अब यह भी मालूम हो गया कि विन्ध्यकेतु की पालिता कन्या यही है जिसे धात्री यशोधरा के द्वारा देवी के पास मैंने भेजा था। आह, इसके नेत्र मानों पीयूष वर्षा रहे हैं। कमनीय हाथों की शोभामयी अँगुलियाँ कमल-वन की शोभा फीकी बना रही हैं। कहा जाता है कि चन्द्रमा को देखकर कमल संकुचित हो जाते हैं, किन्तु दीर्घिका के कमल ज्यों के त्यों खिले क्यों हैं?

कमल पुष्प तोड़ती हुई आरण्यका मधुपान करते हुए भ्रमरों को वहाँ से उड़ाती थी तब वे उसके मुखपद्म पर आकर गुंजार करने लगते थे। कर-कम्र से बारम्बार मुखपद्म के चारों ओर मँडराते हुए भौंरों को वह हटाते-हटाते हार गई तब खीझ कर बोली, 'ये दुष्ट भौंरे अकारण मुझे दुःख दे रहे हैं। अरी, इन्दीवरिका तू कहाँ चली गयी, ये हठीले भौंरे मुझे पुष्प नहीं तोड़ने देते।' इतना कह कर आरण्यका ने आँचल से मुँह ढक लिया।

झाड़ी में छिपे हुए उदयन को पीछे से धक्का देते हुए वसन्तक ने कहा सखे, अवसर न चूकिए! बढ़कर दीर्घिका में उतर जाइए और पीछे से हाथ बढ़ा दीजिए; वह आपको इन्दीवरिका समझ कर आपके दोनों हाथ पकड़ लेगी। विदूषक की यह मनभावी सलाह मानकर उदयन

दीर्घिका में कूद पड़े और उन्होंने आरण्यका के पीछे से अपने दोनों हाथ बढ़ा दिये।

आरण्यका—'बड़े अच्छे मौके पर इन्दीवरिका तुम आ गयीं। मुझे इन लोभी भौंरों से बचाओ।' इतना कह कर उसने राजा के हाथ पकड़ लिये। उदयन अपने उत्तरीय से भौंरों को उड़ाते हुए बोले, 'सुन्दरी, परिमल-लोभी ये भौंरे तुम्हारे मुख को कमल समझ कर चारों ओर मंडरा रहे हैं। तुम कमलवन की लक्ष्मी हो फिर भला ये तुम्हें कैसे छोड़ सकते हैं।'

आरण्यका ने मुड़ कर देखा तो इन्दीवरिका नहीं थी, वह पीछे हटना चाहती थी कि महाराज ने अपनी भुजलताओं में उसे आबद्ध कर लिया। आरण्यका ने चौंक कर कहा—इन्दीवरिका तुम कहाँ हो? दूर खड़े हुए वसन्तक ने कहा—समस्त पृथ्वी की रक्षा करने वाले वत्सराज तुम्हारे पास हैं तब इन्दीवरिका को क्यों पुकार रही हो? आरण्यका ने एक बार आँखों की ओट से महाराज उदयन को फिर देखा और मन ही मन वह सोचने लगी—ओह, यही वत्सराज उदयन हैं, जिन्हें मेरे पिता मुझे समर्पित करना चाहते थे। अहा, यह तो साक्षात् मदनावतार हैं। यह सोचती हुई आरण्यका चुपचाप दृष्टि गड़ाये खड़ी रही। उसे एक अज्ञात अनुभूति शिथिल और सुबद्ध बना रही थी।

इतने में निर्गुण्डीवन से इन्दीवरिका का स्वर सुनाई पड़ा—'डरो मत, आरण्यका मैं आ रही हूँ।'

वसन्तक बोला—'सखे, अब भाग चलो, नहीं तो इन्दीवरिका कहीं देख लेगी तो देवी से बिना कहे न रहेगी और भारी विपत्ति टूट पड़ेगी। उदयन और वसन्तक वहाँ से भाग कर कदली-कुञ्ज में छिप गये। इतने में इन्दीवरिका आ गयी और बोली कि 'भौरों को दोष क्यों दे रही हो, तुम्हारा मुख ही कमल के समान है फिर भला पराग की खोज करने वह कहाँ जायँ?'

आरण्यका—'सखी, तुम मुझे बनाया न करो, अच्छा चलो अन्तःपुर चलें।' दोनों चल पड़ीं। आरण्यका रह-रह कर कदली-कुञ्ज की ओर कुछ खोजती हुई-सी देख रही थी। उसने बहाना किया कि दीर्घिका का जल इतना शीतल था कि मेरे पैर ठिठुर गये, इन्दीवरिका जरा धीरे चलो।

इस प्रथम दर्शन में ही उदयन और आरण्यका एक दूसरे पर मुग्ध हो गये। दुबारा देखने के लिए दोनों के दिल धड़क रहे थे।

× × ×

सांकृत्यायनी नाम की उच्चकुल की परम विदुषी परिव्राजिका वासवदत्ता के पिता के घर आचार्या रूप से रह रही थी। वासवदत्ता का विवाह हो जाने पर भगवती सांकृत्यायनी भी आकर कौशाम्बी में रहने लगी थीं।

उदयन और वासवदत्ता की प्रेम-कथा पर सांकृत्यायनी ने एक बहुत सुन्दर नाटक लिखा था। उदयन और वासवदत्ता दोनों उस नाटक को पढ़कर बहुत प्रसन्न हुए थे। वासवदत्ता की इच्छा हुई कि मेरी सखियाँ अन्तःपुर में इस नाटक का अभिनय करें। अभिनय की तैयारियाँ होने लगीं। वासवदत्ता की प्रधान सहचरी कांचनमाला को कांचनमाला की ही भूमिका दी गयी। दूसरी सखी मनोरमा को उदयन की भूमिका दी गयी। रनिवास की परम सुन्दरी सखी आरण्यका (प्रियदर्शिका) को वासवदत्ता की भूमिका में अभिनय करने के लिए सहेज दिया गया।

आरण्यका (प्रियदर्शिका) ने जिस दिन पहले-पहल कदली-कुंज में वत्सराज उदयन को देखा था तभी से वह बेचैन रहने लगी और कदली-कुंज उसे बहुत प्रिय हो गया था। उसे जब अवकाश मिलता तभी वह कदली-कुंज में जा बैठती थी। वहीं बैठे-बैठे रोती और अपने मन की बातें भी आप ही आप कहती थी।

इस प्रकार आरण्यका को अकेले कदली-कुंज में जाते और घंटों बैठते देख कर मनोरमा को कुछ सन्देह हो गया। एक दिन वह भी चुपके से पीछे-पीछे गयी और छिपकर खड़ी हो गयी। उसने देखा कि आरण्यका बैठी रो रही है और आप ही आप कह रही है—'अरी अभागिन, तेरे लिए महाराज उदयन तो दुर्लभ हैं फिर तू क्यों उनके लिए कामना करती है ?' फिर उसने वही सब बातें कह डालीं जो प्रथम दर्शन में राजा ने उसे सान्त्वना देते हुए कहा था।

सब बातें मनोरमा अच्छी तरह समझ कर उसके सामने खड़ी हो गयी और बोली, 'क्यों सखी, तुम भी मुझसे लज्जा और दुराव करती हो। इतना होने पर भी तुमने मुझसे कुछ भी नहीं बताया।'

आरण्यका लज्जा से गड़ी जा रही थी, सखी से दुराव करने पर ग्लानि से मरी जा रही थी। उसके मुँह से इतना ही निकला कि—'सखी, मैं दया और क्षमा के योग्य हूँ।' और फिर फूट-फूट कर रोने लगी।

'अरी पगली, मैंने तो हँसी की थी, बड़ी अबोध हो तुम आरण्यका ! अच्छा चलो, मैं तुम्हारे हृदय की ज्वाला बुझाने का यत्न करूँगी।'

आरण्यका—सच कहती हो सखी, पर महाराज तो देवी वासवदत्ता के गुणों से बँधे हुए हैं।

मनोरमा—दुत् पगली, यद्यपि भ्रमर कमलिनी के अनुराग में बँधा रहता है फिर भी वह मालती को देख कर पागल बन जाता है।

इसी समय वसन्तक राजा को ढूँढ़ता हुआ उधर ही से निकला और लताओं की ओट से दोनों की बातें भी सुन रहा था।

कुञ्ज से निकलती हुई मनोरमा की दृष्टि वसन्तक पर पड़ते ही वसन्तक घबड़ा गया। वह भयभीत हो गया कि मनोरमा कहीं देवी वासवदत्ता से कुछ कह न दे।

मनोरमा—डरो नहीं वसन्तक ! मैं देवी से कुछ न कहूँगी । तुम्हारे प्रिय सखा के लिए मेरी सखी की जो अवस्था हो रही है उस पर तुम्हें भी दया आनी चाहिए ।

वसन्तक—ठीक यही अवस्था सखा की भी है । क्यों मनोरमा, क्या तुम कोई ऐसा उपाय कर सकती हो, जिसमें तुम्हारी सखी से मेरे सखा का मिलन हो सके ।

मनोरमा ने कुछ सोच कर कहा—अच्छा, एक काम करो । कल 'उदयन चरित नाटक' का अभिनय होगा । मैं उदयन बनूँगी और आरण्यका वासवदत्ता । मैं सोचती हूँ कि मैं कहीं छिप रहूँ और मेरे स्थान पर स्वयं महाराज आकर वासवदत्ता ( आरण्यका ) के साथ सच्चा अभिनय करें ।

वसन्तक—यह कैसे होगा ? अभिनय तो अन्तःपुर में होगा जहाँ पुरुषों का प्रवेश निषिद्ध है ।

मनोरमा—अभिनय आरम्भ होने से पूर्व महाराज प्रेक्षागार के द्वार पर आ जायँ । मैं उन्हें अपने वस्त्र आभूषण दे दूँगी, उन्हें पहन कर वे रंगभूमि में चले जायँगे ।

यह सुनते ही वसन्तक उछल पड़ा और बोला—अच्छा, तय रहा । फिर मनोरमा के कान में मुँह लगा कर बोला—यह बात अपनी सखी आरण्यका से भी न कहना, नहीं सब गुड़ गोबर हो जायगा ।

नहीं कहूँगी, कह कर हँसती हुई मनोरमा आरण्यका के पास चली गयी ।

सखियों से घिरी हुई देवी वासवदत्ता भगवती सांकृत्यायनी को साथ लिए हुए प्रेक्षागार में आ पहुँची ।

सांकृत्यायनी—इन्दीवरिका, सभी लोग तैयार हैं न ? इतने में मनोरमा और आरण्यका ने आगे बढ़कर देवी वासवदत्ता को प्रणाम करते हुए कहा—महारानी की जय हो !

वासवदत्ता—मनोरमा, अब तुम जाकर वस्त्रालंकार धारण करो, इन्दीवरिका के पास आर्यपुत्र के सभी वस्त्रालंकार हैं। उसे ले लो और शीघ्र अभिनय आरंभ करो। फिर आरण्यका की ओर देख कर, 'और आरण्यका, लो तुम मेरे वस्त्रालंकार धारण कर लो।' मनोरमा और आरण्यका यवनिका के पीछे चली गयीं। रनिवास की दर्शक महिलाएँ अपने-अपने आसन पर बैठ गयीं। अभिनय आरंभ हो गया।

× × ×

अभिनेत्री वासवदत्ता हाथ में वीणा लिए हुए अपनी सखी कांचन-माला के साथ उदयन की प्रतीक्षा में बैठी थी, इतने में उदयन का प्रवेश हुआ। अभिनेता उदयन को देखते ही दर्शक-स्थल पर बैठी। देवी वासव-दत्ता उठ कर खड़ी हो गयी और अभिवादन करके बोली—

आर्यपुत्र की जय हो!

यह देख कर उदयन घबड़ा गये और सोचने लगे कि कहीं देवी ने सचमुच पहचान लिया हो तो बड़ा अनर्थ हो जायगा। लेकिन पास में बैठी हुई भगवती सांकृत्यायनी ने हँस कर वासवदत्ता से कहा—

राजकुमारी जी, यह तो नाटक का अभिनय हो रहा है।

वासवदत्ता लजा कर अपने स्थान पर बैठ गयी और कहने लगी—ओह कितना भ्रम हो गया। यह तो मनोरमा है जो आर्यपुत्र के वेष में आयी हुई है। ऐसा जान पड़ता है मानो साक्षात् आर्यपुत्र ही हैं।

सांकृत्यायनी—भ्रम हो जाना स्वाभाविक है राजकुमारी, देखिए वही मोहक रूप, वही बाँकी चितवन, वही गजेन्द्रगति और मेघ का सा गंभीर स्वर। मनोरमा बिल्कुल महाराज की प्रतीक बनी हुई है।

वासवदत्ता—आर्यपुत्र जब मुझे वीणा सिखा रहे थे तब बन्दी अवस्था में थे। इन्दीवरिका यह लो नीलपद्म की माला और मनोरमा को दे दो वह अपने पैरों में बेड़ी के रूप में बाँध ले।

× × ×

अभिनय बिल्कुल स्वाभाविक ढंग से चल रहा था। वासवदत्ता बनी हुई आरण्यका को ऐसा अनुभव हो रहा था मानो स्वयं महाराज ही अभिनय कर रहे हैं। अतः वह भाव-विभोर होकर अभिनय कर रही थी।

वीणा बजाती हुई आरण्यका ने बहुत सुन्दर गाना गाया। उदयन उन्मुक्त होकर सुन रहे थे। गाना समाप्त होते ही उदयन ने प्रशंसा करते हुए कहा, आइए राजकुमारी जी!

आरण्यका—आचार्य को प्रणाम करती हूँ।

कंचनमाला—आइये राजकुमारी जी, इस आसन पर बैठिए।

आरण्यका सकुचा कर राजा के पास बैठ गयी। महाराज उदयन वासवदत्ता बनी हुई आरण्यका को हृदय से लगा कर प्रेमालाप करने लगे। दोनों के शरीर में रोमांच हो गया।

देवी वासवदत्ता इस दृश्य को देख कर बहुत लज्जित हुईं और सांकृत्यायनी से कहने लगीं—भगवती आपने यह क्या किया, मैं आर्य-पुत्र के साथ इस तरह सटकर कभी नहीं बैठी थी और न उन्होंने मुझसे ऐसा प्रेमालाप ही किया था।

सांकृत्यायनी—काव्य में सरसता लाने के लिए इस प्रकार की कल्पनाएँ करनी ही पड़ती हैं, राजकुमारी जी! वासवदत्ता, लज्जितमुख से कुछ बहाना बना कर उठ कर चली गयी। बीच में इन्दीवरिका मिली, वह बोली—देवि, वसन्तक चित्रशाला के द्वार पर पड़ा सो रहा है। वहाँ से वसन्तक के पास पहुँच कर वासवदत्ता ने वसन्तक, वसन्तक कह कर पुकारा।

आँख मलते हुए वसन्तक उठा और पूछने लगा—सखा, आप अभिनय कर आए।

वासवदत्ता—क्या आर्यपुत्र स्वयं अभिनय कर रहे हैं? तो फिर मनोरमा कहाँ है?

वसन्तक आँख मूँदे हुए अन्तिम वाक्य सुन कर कहता है—वह चित्रशाला में है।

चित्रशाला के अन्दर से मनोरमा सारी बातें सुन रही थी। वह भय से काँप रही थी, कि वासवदत्ता ने चित्रशाला में जाकर व्यंग्य की हँसी हँसकर मनोरमा से कहा—वाह मनोरमा, तुमने बहुत ही सुन्दर अभिनय किया। रोती हुई मनोरमा वासवदत्ता के चरणों पर गिर कर कहने लगी—देवि, क्षमा करो ? इस वसन्तक ने रास्ते में रोक कर मेरे सब कपड़े, गहने छीन लिये हैं। मैं चिल्लायी तो यह शोर करने लगा, किसी को मेरा चिल्लाना सुनायी भी न पड़ा।

क्रोध से जलती हुई वासवदत्ता ने कहा—इस कपट अभिनय का सूत्रधार यह वसन्तक है। इसे बन्दी बना लो।

बन्दी वसन्तक को लिए हुए वासवदत्ता प्रेक्षागार में पहुँचीं और कहने लगीं—आर्यपुत्र, मैंने तो आपको मनोरमा समझकर यह नीलपद्म की माला पैरों में बाँधने के लिए दी थी। मुझे क्षमा करें। अब इस अशुभ लक्षण को उतार फेंकिए।

इतना सुनते ही आरण्यका चौंक पड़ी और उदयन भय से काँपने लगे। सांकृत्यायनी मुस्कराती हुई धीरे से बोलीं—यहाँ तो और ही नाटक हो रहा है, अब मुझे यहाँ न रहना चाहिए और वह चली गयीं।

× × ×

आरण्यका और वसन्तक बन्दी बना लिये गये। अन्तःपुर पहुँच कर वसन्तक तो किसी प्रकार मुक्त हो गया, किन्तु बेचारी आरण्यका बन्दीगृह में डाल दी गयी।

उज्जैन से आया हुआ दूत देवी वासवदत्ता से उनकी माता का सन्देश कह रहा है कि पुत्री, अङ्गराज तुम्हारे मौसिया हैं, उन पर कलिंग-

राज ने चढ़ाई की है तुम्हें उचित है, कि वत्सराज को उनकी सहायता के लिए प्रेरित करो।

यह सुन कर वासवदत्ता फूट-फूट कर रोने लगी, वह कहने लगी— महाराज को किस मुँह से प्रेरित करूँ। वह मुझ पर स्नेह भी नहीं करते। इतने में वत्सराज भी वहाँ पहुँच जाते हैं। देवी वासवदत्ता उठकर अभिवादन करती हैं, राजा उदयन हाथ पकड़ कर बैठाते हुए कहते हैं, देवि, मैं अपराधी हूँ, मुझे क्षमा करो। वासवदत्ता रोने लगती है और स्वयं क्षमा माँगती हुई अपनी माँ का सन्देश सुनाती है।

उदयन ने हँस कर कहा कि हमने पहले ही अपनी सेना भेज दी है। देवि, तुम्हें कहने की आवश्यकता नहीं।

महाराज की जय हो! इतने में अन्तःपुर की प्रतीहारी आकर कहती है, कि सेनापति विजयसेन आये हुए हैं।

राजा—यहीं आने दो।

विजयसेन—परम भट्टारक की जय हो? कलिंगराज को पराजित कर अङ्गराज को बन्दीगृह से मुक्त किया गया। यह सुनकर वासवदत्ता गद्गद् हो गयीं। अवसर पाकर विदूषक बोला—इस खुशी में अन्तःपुर के सभी बन्दी कारामुक्त किये जायँ।

हँसती हुई वासवदत्ता ने आरण्यका को मुक्त कर बुला लाने का आदेश दिया।

आरण्यका के आते ही विजयसेन के साथ आये हुए वृद्ध कंचुकी ने दौड़ कर बेटी प्रियदर्शिका, प्रियदर्शिका कहते हुए उसे हृदय से लगा लिया। प्रियदर्शिका का नाम सुनते ही वासवदत्ता सन्न हो गयी! अरे! यह तो मेरी बहन है, हाय! मैंने इसे बड़ा दुःख दिया। बहन क्षमा कर दो।

इतने में वसन्तक से न रहा गया और बोला कि ब्राह्मण को कुछ दक्षिणा मिलनी चाहिए। हँसते हुए उदयन बोले और हमें?

वसन्तक—मुझे तो पेट भर भोजन और तुम्हें यह कह कर प्रियदर्शिका की ओर इशारा करते हुए महारानी वासवदत्ता की ओर देखने लगा।

हँसती हुई वासवदत्ता ने कहा—हम दोनों की मनोकामना पूरी करेंगे।

वसन्तक—उदयन की पीठ ठोंकते हुए तो फिर बढ़ाओ न हाथ?

वासवदत्ता ने, उदयन का हाथ खींचकर प्रियदर्शिका के हाथ में रख कर कहा—बहिन, तुम भी पटरानी बनीं।

वसन्तक—अन्तःपुर के कपट कला-विलास की जय!

रानी—अब तो वास्तविक विलास की तैयारियाँ करो, राज्यभर में मेरी ओर से मंगलाचार करने की घोषणा कर दो।

# कौशाम्बी के अन्तःपुर का इन्द्रजाल

सिंहलनरेश महाराज विक्रमबाहु की परम सुन्दरी कन्या रत्नावली को देखकर किसी सिद्ध पुरुष ने बताया था कि इस सुन्दरी सुलक्षणा राजकुमारी से जिसका विवाह होगा वह सागरपर्यन्त पृथ्वी का अधिपति होगा।

कोशाम्बी नरेश महाराज उदयन के परमहितैषी मंत्री यौगन्धरायण को जब यह बात मालूम हुई तो उसे इस बात की चिन्ता सताने लगी, कि किस प्रकार महाराज उदयन का विवाह रत्नावली के साथ हो। धुन का पक्का, दृढ़व्रती वह मंत्री यह भी जानता था, कि रत्नावली उदयन की पटरानी देवी वासवदत्ता के मामा की लड़की है, इसलिए महाराज स्वयं उस कुल में विवाह करने के लिए राजी न होंगे, लेकिन कदाचित् यदि सिंहल नरेश प्रार्थना करेंगे तो शायद है महाराज इनकार भी न कर सकें। इस तरह सोचने-विचारने के बाद यौगन्धरायण ने बिना किसी को बताए अपनी ओर से एक दूत सिंहल भेजकर कन्या की याचना की। सिंहल नरेश ने यह सोचकर इनकार कर दिया कि जहाँ भानजी ब्याही हुई है, वहाँ अपनी कन्या का विवाह करना आपस में मतभेद पैदा करना होगा। इस प्रकार यौगन्धरायण द्वारा दो बार प्रस्ताव किए जाने के बाद भी जब सिंहल नरेश अपनी कन्या का विवाह उदयन के साथ करने को राजी न हुए तो यौगन्धरायण ने अपने गुप्तचरों को सिंहल भेज कर यहाँ-वहाँ प्रचार करा दिया, कि अन्तःपुर में अचानक आग लग जाने से देवी वासवदत्ता जलकर मर गयीं। इसके बाद कुछ ही दिनों में उसने अन्तःपुर के वाभ्रव्य नामक एक कंचुकी को भेजकर सिंहल नरेश से रत्नावली के विवाह का पुनः प्रस्ताव किया। सिंहल के

राजा यह पहले ही सुन चुके थे, कि वासवदत्ता मर गयी है, इसलिए इस बार उन्होंने इनकार न किया और अपने मंत्री वसुभूति तथा अनेक परिचारिकाओं सहित रत्नावली को एक रत्नहार और विपुल धन देकर बाभ्रव्य कंचुकी के साथ कौशाम्बी के लिए विदा किया।

सिंहल से जहाज चल पड़ा, पर बीच में एक दिन भीषण-समुद्री-तूफान आ जाने से वह जहाज डूब गया। डूबती हुई रत्नावली के हाथ एक लकड़ी का सहारा मिल गया और वह उसी के आधार पर तिरती हुई बह रही थी। उसी समय कौशाम्बी का एक श्रेष्ठी सिंहल से रत्नों का व्यापार करके लौट रहा था। उसने रत्नावली को पकड़ कर अपने जहाज में बैठा लिया। रूप, शील और अलंकार देख कर उस व्यापारी ने समझ लिया कि यह सिंहल नरेश की कन्या है, अतः उसने उसे सुरक्षित रूप में कौशाम्बी लाकर यौगन्धरायण के सुपुर्द कर दिया।

यौगन्धरायण को फिर चिन्ता उत्पन्न हुई, कि रत्नावली को महाराज कैसे स्वीकार करेंगे ? ऐसा कोई प्रमाण भी नहीं है, जिससे उन्हें विश्वास हो जाय कि सिंहल नरेश ने स्वयं अपने मन्त्री के साथ अपनी कन्या को भेज कर पाणिग्रहण करने की प्रार्थना की है। बहुत कुछ सोचने-विचारने के बाद यौगन्धरायण ने निश्चय किया कि इसे कुछ समय तक अन्तःपुर में देवी वासवदत्ता की संरक्षता में रखा जाय। यह निश्चय कर उसने रत्नावली का नाम 'सागरिका' रख कर उसे अन्तःपुर में रहने के लिए भेज दिया। सागरिका का रूप, यौवन देख कर महारानी वासवदत्ता को भी यह चिन्ता हुई, कि यदि महाराज की नजर कहीं इस पर पड़ गयी तो वे अवश्य मोहित हो जायँगे, इसलिए उन्होंने ऐसा प्रबन्ध किया कि सागरिका और महाराज का कभी साक्षात्कार ही न हो सके।

इधर कुछ दिनों बाद यौगन्धरायण को यह सूचना मिली कि सिंहल के मन्त्री वसुभूति और हमारे कंचुकी बाभ्रव्य किसी प्रकार जीवित बच गये हैं और वे कौशाम्बी आ रहे हैं। यह जान कर यौगन्धरायण

आश्वस्त हुआ कि अब महाराज का विवाह रत्नावली से हो जाना संभव हो जायगा।

वसन्त ऋतु का समय था। मकरन्द उद्यान नवयौवन धारण किए हुए था, सुरभित आम्रमंजरियों पर लोभी भँवरे अनवरत गुञ्जार कर रहे थे, मत्त कोकिला कुहू-कुहू की रागिनी छेड़ रही थी, ऐसे समय में देवी वासवदत्ता वस्त्रालंकार से सुसज्जित होकर मदनपूजा के लिए मकरन्द-उद्यान की ओर चलीं। प्रमुख सहचरी कांचनमाला उनके पीछे-पीछे चल रही थी और अन्य सखियाँ तथा परिचारिकाएँ उन्हें घेरे हुए चल रही थीं किन्तु सागरिका उस समय उनके साथ न थी। क्योंकि महारानी ने पहले ही सोच रखा था कि मदनपूजा में आर्यपुत्र आयँगे ही, कहीं वे सागरिका को देख न लें, नहीं तो अनर्थ हो जाय, इसलिए उन्होंने सारिका की रखवाली के बहाने उसे अन्तःपुर में ही छोड़ दिया था। लेकिन सागरिका के हृदय में अकस्मात् यह कुतूहल उठा कि कौशाम्बी की अनंगपूजा किस तरह से होती है। किसी प्रकार देखी जरूर जाय। यह सोचकर वह छिप कर लताकुञ्जों में जा बैठी। वहीं पास ही एक अशोक का वृक्ष भी था जहाँ मदनपूजा होती थी और महारानी अपने चरणाघात से उसे पुष्पान्वित करेंगी।

मदनावतार महाराज उदयन मणिजटित स्वर्णपीठ में अशोक के तले बैठे हुए थे और महारानी उनका पूजन कर रही थीं, वैतालिक स्वस्तिवाचन कर रहे थे। मदन पूजा के बाद महाराज की पूजा करके जब वासवदत्ता ने उनके चरणों में पुष्प बिखेर दिये उसी समय लताओं की ओट से सागरिका ने महाराज उदयन को देखा तो उसे ऐसा जान पड़ा मानों साक्षात् कामदेव बैठे हुए पूजा ग्रहण कर रहे हैं। आज मदनोत्सव है, कामदेव और उनमें कोई अन्तर भी नहीं है—यह सोच कर सागरिका ने लताकुञ्ज से पुष्प चुन कर वहीं अर्पित कर दिया। लेकिन जब वैतालिकों ने वंश-गोत्र आदि का नाम ले-लेकर महाराज उदयन की

प्रशस्ति का पाठ प्रारंभ किया तब सागरिका को ज्ञात हुआ कि यही महाराज उदयन हैं, जिनके हाथों में मुझे मेरे पिता ने सौंपा था। वह बार-बार उन्हें देखती हुई अघाती नहीं थी, उधर कोई देख न ले इसका भी भय था। पूजा समाप्त होते ही वह उदास मन से सारिका के पास पहुँच गयी। उस दिन से सागरिका बहुत उदास रहने लगी। मदनव्यथा से व्यथित उसे कहीं चैन नहीं मिलती थी। कदली-पत्रों पर प्रणयपत्रिका लिखा करती। कदली-कुंज में जाकर चित्रपट पर महाराज उदयन का चित्रांकन किया करती। फिर उसी चित्र से अपनी मनोव्यथा रो-रोकर सुनाती थी। रानी वासवदत्ता की सहेली सुसंगता पर ही सागरिका की रक्षा का भार था, वह उसकी ऐसी दशा देखकर चिन्तित हुई। एक दिन ढूँढ़ती हुई वह कदली-कुञ्ज में पहुँची तो उसने देखा कि सागरिका एक चित्रपट को हृदय से चिपकाए हुए अपनी प्रणय वेदना उसे सुना रही है। उसने देखा वह चित्र महाराज उदयन का था। तब हँसकर वह बोली—सखि, हंसिनी को मानसरोवर ही पसन्द आता है। यह सुन कर सागरिका चौंक उठी और लज्जा से उसका मुख लाल हो उठा। सुसंगता सागरिका को बहुत प्यार करती थी, उसने चित्रपट लेकर कहा—यह अभी अधूरा है और तूलिका लेकर उस पर सागरिका का भी चित्रांकित कर वह बोली—देखो सखि, रति पति के साथ रति कैसी जँच रही है?

सागरिका समझ गयी कि सुसंगता को सब मालूम है। इसलिए वह भयभीत होकर गिड़गिड़ाती हुई बोली—सखि, मेरी यह एकान्त आराधना किसी और को न मालूम होने पाये।

सुसंगता ने कहा—मुझसे मत डरो, लेकिन यह सारिका बड़ी दूती है, जो सुन लेती है उसे कभी भूलती नहीं। बार-बार वही बात दुहराया करती है। बातें पूरी भी न हो पायी थीं कि अन्तःपुर का बन्दर छूट जाने से प्रमद वन में कोलाहल मच गया। डर के मारे सुसंगता और सागरिका भाग गयीं किन्तु चित्र वहीं का वहीं पड़ा रह गया। चित्र की याद आने

पर पुनः लौटीं तो वह बन्दर आ गया था, और उसने सारिका का पिंजड़ा खोल दिया, वह उड़ने लगी। दोनों घबड़ा कर उसे पकड़ने को दौड़ीं इस भय से कि देवी वासवदत्ता कुपित हो जायँगी। किन्तु फुदकती हुई मैना बहुत कम हाथ लगा करती है। सारिका को खोजने में दोनों व्यस्त थीं। सहसा अरे बन्दर आ गया चिल्ला कर सागरिका सुसंगता से लिपट गयी। सुसंगता ने मुड़कर देखा तो विदूषक वसन्तक था, उसे हँसी आ गयी और बोली—अरी पगली, यह तो आर्यपुत्र के सखा वसन्तक है। दोनों आगे बढ़ीं पर सारिका हाथ न आयी, आखिर थक कर कदली-कुञ्ज में बैठ गयीं।

महाराज उदयन ने ऐन्द्रजालिक श्रीखण्डदास से ऐसी विद्या सीखी थी कि वे बिना ऋतु के वृक्षों में पुष्प खिला देते थे। एक दिन महाराज और महारानी में यह शर्त लगी कि पहले माधवी फूलती है या नवमल्लिका। महाराज ने अपने इन्द्रजाल के प्रयोग से कुसमय में ही नवमल्लिका को फुला दिया था। वसन्तक ने उन्हें बताया कि आपकी नवमल्लिका पुष्प-भार से बोझिल हो रही है चलिए देख लीजिए ! महाराज उदयन उसके साथ उद्यान में गए तो उन्हें सारिका का कलकण्ठ सुनायी पड़ा। वह वहीं रुक गए तो सारिका मधुर स्वर से सागरिका और सुसंगता की बात दुहरा रही थी। महाराज ने वसन्तक से कहा– सखे, चलो वह चित्रपट ढूँढ़े जिसमें किसी कामिनी ने रतिपति का चित्र खींचा है और किसी सखी ने उसमें रति का चित्र अंकित कर दिया है। हाँ-हाँ रतिपति भगवान् अपनी रति देवी के दर्शन जरूर करें—यह कह कर वसन्तक जोर से ठहाका मार कर हँस पड़ा और सारिका उड़ गयी।

मूर्ख तूने सब बिगाड़ दिया कितना मधुर स्वर था, हाँ हाँ हँसकर तूने उसे उड़ा दिया—बता अब क्या करें उदयन की यह बात सुनकर वसन्तक ने कहा—करें क्या कदली-कुञ्ज की ओर सारिका गयी है—वहीं चलिए।

कदली-कुञ्ज पर पहुँचते ही उस चित्रपट को महाराज उदयन की

आँखें बचा कर वसन्तक ने उठा लिया, बड़े ध्यान से देख कर जोर से हँस पड़ा, महाराज ने कहा फिर मूर्खता कर रहा है। वसन्तक ने कहा, ओह विज्ञ वसन्तक खानदानी पंडित है। जो कह देता है वही होता है। देखिए, मैंने कहा था वही है न! कामदेव के स्थान पर श्रीमान् ही तो हैं—पहचानिए अपने आपको? महाराज ने चित्रपट को हाथों में ले लिया। चित्रगत सागरिका को देखकर वह विमुग्ध हो गए और कहने लगे – जिसे आज तक मैंने देखा नहीं क्या वह मेरे प्रेम में पागल है? आह कितनी सुन्दरी और रूपगर्विता है यह······बात पूरी न हो पायी थी कि इसी बीच चित्रपट लेने सागरिका और सुसंगता भी वहाँ आ पहुँची। सुसंगता ने कहा, सागरिका तुम छिप रहो मैं जाकर चित्रपट लिए आती हूँ। सुसंगता को देखते ही उदयन के होश फाख्ता हो गए। वह डर गए कि इसने कहीं चित्र देख लिया हो तो यह देवी वासवदत्ता से जाकर कह देगी जिससे वह कुपित होंगी। फिर भी झट उन्होंने उस चित्रपट को कदली पत्रों में छिपा दिया। मुस्कराती हुई सुसंगता बोली, आर्यपुत्र मैंने देख लिया है चित्रपट को छिपाते हुए और वसन्तक से जो बातें भी हुई हैं उन्हें भी सुन लिया है—सब कुछ देवी से जाकर निवेदन करूँगी।

उदयन—मैंने तुम्हें देख कर चित्रपट नहीं छिपाया सुसंगता। देवी से कह कर उन्हें व्यथित न करना। यह लो कुण्डल और कण्ठहार मैं तुम्हें पुरस्कार देता हूँ।

सुसंगता—आप ही का तो सब कुछ मेरे पास है आर्यपुत्र, इन्हें लेकर मैं क्या करूँगी। हाँ यदि मेरी प्रार्थना स्वीकार करें तो वही मैं सबसे बड़ा पुरस्कार समझूँगी।

उदयन—कहो सुसंगता क्या कहना चाहती हो?

सुसंगता—इस चित्रपट की रति का नाम सागरिका है। वह मेरी सहेली है। आपका चित्र उसने बनाया था, जिसके साथ मैंने उसका भी चित्र बना दिया है। इस कारण वह मुझसे रूठ गयी है। यदि आप

उसके पास चल कर दो चार मीठी-मीठी बातें करके उसको प्रसन्न कर सकें तो बड़ी कृपा हो।

उदयन—हाँ हाँ चलो वह कहाँ हैं?

वसन्तक—देरी न करो यही तो यह चाहते थे?

उदयन—चुप मूर्ख!

सुसंगता—आर्यपुत्र वह उस कदली-कुञ्ज में है, आप चले जायँ? महाराज उदयन सुध-बुध खोकर चल पड़े और चित्रपट वहीं पड़ा रहा जिसे चुपचाप वसन्तक ने उठा कर छिपा लिया।

कदली-कुञ्ज में बैठी हुई अतुल रूप-राशि सागरिका को देख कर महाराज उदयन विमोहित हो गए! क्षण भर तक रूपसुधा का पान करने के बाद उसके निकट जाकर बोले, प्रेयसि, यही तुम्हारा रूप चित्रपट पर अंकित है। यह सुन कर लज्जित सागरिका उठ कर भागना चाहती थी कि आगे छेंक कर महाराज खड़े हो गए और कहने लगे—इस प्रकार क्रोध मत करो देवि!

सागरिका नीची निगाहें किए खड़ी रही। वह बोल न सकी। राजा प्रेम की मीठी-मीठी बातें करते जा रहे थे। पर वह चुप थी। तब वसन्तक ने कहा—अरे यह तो अभिमान करने में दूसरी वासवदत्ता हैं। वासवदत्ता का नाम सुनते ही उदयन घबरा कर इधर-उधर देखने लगे कि कहीं देवी वासवदत्ता आ गयीं क्या। इतने में सागरिका निकल कर सुसंगता के साथ चली गयी। राजा खड़े पछता रहे थे, कि सचमुच पग-नूपुरों की झनकार सुनायी पड़ी और कांचन माला के साथ रानी वासवदत्ता वहाँ उपस्थित होकर बोलीं—आर्यपुत्र की जय हो!

क्या सचमुच आपकी नवमल्लिका फूली है?

उदयन—हाँ देवी, आओ चलें देखें?

वासवदत्ता—देख कर क्या होगा, जब आप कह रहे हैं, तब तो आपकी जीत है ही।

यह सुनते ही वसन्तक 'हमारी जीत हो गयी', 'हमारी जीत हो गयी' कह कर दोनों हाथ उठा कर नाचने लगा। हाथों के उठते ही छिपा हुआ चित्रपट जमीन पर गिर पड़ा और कांचनमाला ने झट उसे उठा कर रानी वासवदत्ता को देते कहा—देखिए देवी, यह किसका चित्र है? चित्र देख कर क्रुद्ध वासवदत्ता ने पूछा—आर्यपुत्र यह किसका चित्र है?

महाराज से कुछ कहते-बोलते न बना। साहस करके वसन्तक बोला, देवी क्रोध न करें। एक दिन मैंने महाराज से कहा था, कि अपना चित्र बनाना बड़ा कठिन है। इसीलिए महाराज ने इसे स्वयं बना कर दिखा दिया है।

बिल्कुल यही बात है—उदयन ने भी कहा।

और आप के बगल में जो चित्र है वह क्या वसन्तक जी का बनाया हुआ अपना चित्र है?

उदयन—उसे किसने बनाया है यह तो मैं नहीं जानता और न मैंने देखा ही है।

यह सुन कर रानी बहुत क्रुद्ध हुईं। थोड़ी देर तक खड़ी रहने के बाद बोलीं—आर्यपुत्र मेरी तबीयत ठीक नहीं है, मैं जाती हूँ।

वासवदत्ता का आँचल पकड़ कर गिड़गिड़ाते हुए महाराज बोले—देवि, क्षमा करो? मैं निर्दोष हूँ। सहसा तुम्हें देख कर मैं घबरा गया हूँ। कोई उत्तर भी नहीं देते बना है।

लेकिन कुपित वासवदत्ता ने कुछ भी नहीं सुना और अंचल छुड़ा कर वह राजप्रासाद में चली गयीं।

क्षुब्ध और व्यथित महारानी चिन्तामग्न थीं, कि कहीं परिणाम भयङ्कर न हो जाय। उन्होंने कांचनमाला से परामर्श किया। उसने सलाह दी कि सुसंगता चतुर सखी है, उसी की देख-रेख में सागरिका को रखा जाय और महाराज उसे देख न सकें। महारानी ने सुसंगता को बुला कर

बहुमूल्य वस्त्राभरण उसे देकर कहा — सखी, सागरिका के पास हर समय उसकी छाया बन कर रहा, महाराज की नजरों से उसे बचाए रखो मैं तुम पर विश्वास करती हूँ। महारानी को दिलासा, झाँसा देकर वस्त्रालंकार ले सुसंगता चली आयी और बड़ा प्रसन्नता से सागरिका से बताया कि यह अच्छा ही हुआ कि मुझे ही रखवाली के लिए देवी ने नियुक्त किया। अब निष्कण्टक प्रणय व्यापार चलाओ सखी। फिर उसने कहा, कल सन्ध्या को माधवी मण्डप में फिर मिलन कराऊँगी। मैं कांचनलता बन जाऊँगी और तुम मेरे इन वस्त्रालकारों को धारण कर लेना। उसने वसन्तक से कह दिया कि कल सन्ध्या समय माधवी मण्डप में महाराज को ले आना। वसन्तक ने यह सुखद समाचार जब महाराज से बताया तो वे फूले न समाए और बड़े प्रेम से गद्‌गद् हो वसन्तक की पीठ थपथपाने लगे। दुर्भाग्य की बात जब सुसंगता वसन्तक से कह रही थी, उस समय कांचनमाला छिपी हुई सब बातें सुन रही थी। और फिर दौड़ कर महारानी से सब टीप दिया। वासवदत्ता ने कहा कि कल हम इनसे पहले ही माधवी-मण्डप में पहुँच कर सारा रहस्य खोल दें।

दूसरे दिन जल्दी-जल्दी महाराज उदयन वसन्तक के साथ माधवी मण्डप में पहुँच कर सागरिका को जोहने लगे। इधर कांचनमाला और वासवदत्ता भी पहुँच गयीं। पगनूपुरों की झनकार सुन कर उदयन का हृदय उछलने लगा। कुछ अँधेरा हो चला था। माधवी मण्डप के समीप पहुँच कर रानी वासवदत्ता ठहर गईं। उदयन ने उठकर स्वागत करते हुए कहा—प्रिये सागरिके, आओ, रुक क्यों गयीं, मैं कब से तुम्हारे इन्तजार में तड़प रहा था। आओ देवि, रुकी क्यों हो, अरे 'बोलती भी नहीं हो। क्यों रूठ गयीं रानी। किन्तु वासवदत्ता घूँघुट से मुँह ढाके हुए चुपचाप विष पान करती जा रही थीं। उनके टस से मस न होने पर विदूषक ने कहा—सागरिका आओ, लज्जित क्यों हो रही हो ? महाराज बुला रहे हैं। तुम्हारे लिए कितने आतुर हैं। इनके हृदय में केवल तुम्हारे लिए

ही अब स्थान रह गया है। देवी वासवदत्ता के कटुभाषणों को सुनते-सुनते इनके कान पक गए हैं। और हृदय तो छलनी हो गया है, आकर कुछ शान्त करो। मान मत करो देवि!

परन्तु फिर भी देवी चुप थीं, तब प्रणय की भीख माँगते हुए उदयन उसके निकट आकर बड़े रस की बातें करने लगे। बातें करते-करते चन्द्रमा उदित हो गया। तब उदयन से न रहा गया और बोले, देखो देवि, चन्द्रमा निकल कर तुम्हारे मुख-मण्डल की शोभा बढ़ाने के लिए आतुर हो रहा है और तुम मुख ढाँके खड़ी हो। यह ठीक नहीं, इसे खोल दो। यह कह कर ज्यों ही वे आलिङ्गन के लिए बढ़े कि रानी वासवदत्ता ने अपना मुँह खोल दिया। देखते ही राजा उदयन के प्राण सूख गए और पीछे हट कर वसन्तक के पास आकर बोले; मित्र अब क्या होगा?

इतोभ्रष्टस्ततोभ्रष्ट:।

विदूषक ने कहा—अरे मैं तो मरा जा रहा हूँ। इस दीन ब्राह्मण की क्या दुर्गति होगी।

रानी ने कहा—आर्यपुत्र, मैं आपके मनोभाव समझ गयी। आपके ऐसे व्यवहारों पर क्रोध करना निर्लज्जता है। मैं जा रहा हूँ आप सुख से रहें।

कांचनमाला ने रोक कर कहा—देवि क्षमा करो, महाराज बहुत लज्जित हो रहे हैं।

लेकिन वासवदत्ता रुकी नहीं। वह चली गयीं। उदयन ने वसन्तक से कहा—अब क्या करें देवी तो क्रुद्ध होकर चली गयीं।

वसन्तक—जान बची लाखों पाये। दोनों जने मार खाने से बच गए यही क्या कम उनकी भलमनसाहत रही।

उदयन—यह हँसी करने का समय नहीं है। उन्हें कैसे प्रसन्न किया जाय यह बताओ?

सागरिका ने देर तक सुसंगता की प्रतीक्षा की। जब वह न आयी तो

उससे न रहा गया और सजबज कर माधवी मण्डप की ओर अकेले ही चल पड़ी, लेकिन वहाँ उसने जब देखा कि महाराज महारानी से क्षमा माँग रहे हैं, तो सब कुछ समझ कर लौट पड़ी और निश्चय कर लिया कि अब प्राणत्याग के अतिरिक्त कोई चारा नहीं है। ऐसा निश्चय कर वह माधवी लता की फाँसी बनाकर अशोक वृक्ष पर लटकने जा रही थी, कि वसन्तक की दृष्टि पड़ गई और उसने चिल्ला कर कहा—महाराज बचाओ देवी वासवदत्ता आत्महत्या करने जा रही हैं। महाराज उदयन ने दौड़कर गले का फन्दा तोड़ दिया। देखा तो सागरिका थीं, उसे हृदय से लगा लिया। वह बोली महाराज मुझ अभागिन को छोड़ दें, अब मेरे लिए मृत्यु ही एक सहारा है।

उदयन बोले. ऐसा मत करो प्रिये, देवी वासवदत्ता हमारी पटरानी हैं, उन्हें प्रसन्न करने के लिए हम उनके पैरों पर भी पड़ते हैं, मिथ्या चाटुकारिता करते हैं, किन्तु हमारे हृदय में तुम्हारे अतिरिक्त और किसी का स्थान नहीं है।

यह अन्तिम वाक्य महारानी वासवदत्ता ने सुन लिया, वह कांचन-माला के साथ महाराज को मनाने के लिए लौटी थीं, किन्तु सागरिका और महाराज का मिलन उन्हें अखर गया। वह बोली बस महाराज सब कुछ ज्ञात हो गया।

यह सुनते ही उदयन सन्न हो गए। बोले देवी, क्षमा करो हमारी बात सुन लो।

वसन्तक ने कहा—महारानी, महाराज निर्दोष हैं, यह स्त्री फाँसी लगा कर आत्महत्या करने जा रही थी, महाराज ने आपको समझ कर इसे छुड़ाया था।

क्रोध से काँपती हुई वासवदत्ता ने कांचनमाला से कहा—बाँध लो इस ब्राह्मण को माधवी लता से और इस दुष्टा दुराचारिणी को भी बाँध कर ले चलो ?

पटरानी की आज्ञा का निषेध करने का अधिकार महाराज को भी न था। वसन्तक और सागरिका दोनों बन्दी बनाकर अन्तःपुर भेज दिए गए। महाराज के बहुत अनुनय-विनय करने पर वासवदत्ता ने उन्हें क्षमा कर दिया और वसन्तक को भी बन्धन-मुक्त कर मीठे-मीठे पकवान खिलाकर और वस्त्रालंकार देकर विदा किया, किन्तु बेचारी सागरिका बन्दी ही बनी रही।

वसन्तक जब लौट रहा था, तो रास्ते में एक रत्नहार लिए हुए सुसंगता बैठी रो रही थी। वसन्तक के पूछने पर उसने बताया कि देवी ने सागरिका को उज्जयिनी भेजने के बहाने कहीं अन्यत्र भेज दिया है। जाते समय वह यह रत्नहार मुझे दे गयी है, तुम्हें देने के लिए। रत्नहार को हाथ में लेते ही वसन्तक रो पड़ा, उसने कहा यह बहुमूल्य रत्नहार उसे कहाँ से मिला। सुसंगता ने कहा यह तो मैं नहीं जानती एक बार मैंने पूछा भी था किन्तु उसने कहा क्या करोगी सखी संघर्षमय जीवन की गाथा पूछ कर। लेकिन इस हार से वह उच्च कुल की कुमारी जान पड़ती है। हार को ले जाकर वसन्तक ने महाराज को दिया। वे उसे हृदय से लगा कर घंटों रोते रहे। और सोचते रहे, कि क्या दशा होगी उस निर्दोष स्त्री की। इसी समय प्रतीहारी ने आकर निवेदन किया महाराज की जय हो! सेनापति रुमण्वान् के भतीजे विजय वर्मा कुछ निवेदन करना चाहते हैं। उन्होंने अन्दर लाने की आज्ञा दे दी। विजय वर्मा ने आकर निवेदन किया कि सेनापति ने कोशल को जीत लिया है। विजय-समाचार सुनकर महाराज उदयन का दुःखी हृदय कुछ प्रसन्न हुआ और उन्होंने पुरस्कार देकर विजय वर्मा को विदा किया।

एक दिन राजदरबार लगा था। महाराज सिंहासन पर बैठे हुए थे। उज्जयिनी के एक ऐन्द्रजालिक ने आकर निवेदन किया—महाराज मैं

इन्द्रजाल द्वारा असंभव को सम्भव कर सकता हूँ। देवता, यक्ष, गन्धर्व जिसे आप कहें यहाँ प्रत्यक्ष बुलाकर दिखा सकता हूँ।

वसन्तक ने कहा—यदि महाराज को प्रसन्न करना चाहते हो तो सागरिका को बुलाकर दिखा दो।

ऐन्द्रजालिक हँसा और बोला—यह कौन सी बड़ी बात है, इतने में प्रतीहारी ने आकर निवेदन किया कि आर्यबाभ्रव्य के साथ सिंहल राज्य के प्रधान मंत्री वसुभूति आये हुए हैं। वासवदत्ता ने भी अनुरोध किया कि मेरे मामा के मंत्री से इसी समय भेंट की जाय। महाराज ने ऐन्द्र-जालिक को उस समय विदा किया और उन्हें बुलाया।

मंत्री वसुभूति ने आकर अभिवादन किया और बताया कि आर्य यौगन्धरायण की प्रार्थना पर सिंहल नरेश ने अपनी कन्या रत्नावली को आप के साथ विवाह कर देने के लिए विदा किया था। किन्तु जहाज डूब जाने से वह तो मर गयी, किसी प्रकार आप के कंचुकी के साथ में बच कर यहाँ आया हूँ। यह सुनकर उदयन बहुत दुःखी हुए। मामा की लड़की की मृत्यु को सुन कर वासवदत्ता भी फूट-फूट कर रोने लगी। इतने में वसुभूति की दृष्टि वसन्तक के गले में पड़े हुए रत्नहार पर पड़ी। वह असमंजस में पड़ गया कि राजकुमारी रत्नावली का हार इन्हें कैसे मिला। एकान्त में इनसे अवश्य पूछूँगा। इसी बीच अन्तःपुर में आग लग जाने से हाहाकार मच गया। दौड़ो देवी वासवदत्ता जल रही हैं—की आवाज सुनते ही उदयन आग में कूदने के लिए तैयार हो गए। वासवदत्ता ने कहा, आर्यपुत्र मैं तो आपके पास खड़ी हूँ। उदयनबोले, देवी मुझे कुछ सूझता नहीं लोग चिल्ला रहे हैं। आग की लपटें अन्तःपुर को जला रही हैं। वासवदत्ता बोली नाथ, सागरिका को मैंने लोहे की शृंखलाओं से बाँध रखा है, कहीं वह तो नहीं जल रही है। यह सुनते उदयन भागकर आग में कूद पड़े। उधर से बेड़ियाँ पहने हुए सागरिका भी दौड़ती हुई महाराज से चिपक गयी। उदयन बोले, देवी, हमारा

तुम्हारा मिलन यही अग्नि-ज्वाला है। यह सुनकर सागरिका को परम सन्तोष हुआ। महाराज को अग्नि में कूदते देख वासवदत्ता भी कूद पड़ी, फिर वसन्तक, वसुभूति आदि सभी लोग एक-एक कर के आग में कूदते गए, थोड़ी देर में न कहीं आग और न कहीं हाहाकार; सभी लोग आश्चर्य-चकित थे। पैरों में बेड़ी पहने हुए रत्नावली को देखकर वसुभूति पहचान गए और हृदय से लगा कर बोले—राजकुमारी, तुम्हारी यह क्या दशा? वसुभूति को पहचान कर रत्नावली चीख उठी और मंत्रीवर कहकर वह बेहोश होकर गिर पड़ी। वासवदत्ता ने जान लिया कि यह तो मेरे मामा की लड़की रत्नावली है, उसने स्वयं उसके मुँह में पानी के छींटे देकर उसे होश में लाने का प्रयत्न किया। और महाराज उदयन से बोली—आर्यपुत्र मैं बहुत लज्जित हूँ, अपनी बहिन को मैंने जो यातनाएँ दी हैं, उनके कारण इसे अपना मुँह नहीं दिखा सकती अब आप ही इसकी बेड़ियाँ खोल दें। महाराज ने इसकी बेड़ियाँ खोल दीं। इसी बीच यौगन्धरायण ने आकर सब किस्सा सुनाया और यह भी बताया कि यह इन्द्रजाल भी मैंने ही कराया है, केवल महाराज की समृद्धि के लिए। यह सुनकर सब लोग बड़े प्रसन्न हुए, यौगन्धरायण की प्रशंसा करने लगे। रानी वासवदत्ता ने रत्नावली का अपने हाथ से शृङ्गार किया और बोली, आर्यपुत्र, बढ़ाइए हाथ, अपनी यह बहिन मैं तुम्हें समर्पित करती हूँ।

जो आज्ञा कहकर उदयन ने रत्नावली का पाणिग्रहण किया। वसन्तक ने भरपेट मिष्ठान्न खाया। कौशाम्बी के अन्तःपुर का इन्द्रजाल सुखद और स्मरणीय बन गया।

# कौशाम्बी के अन्तःपुर में कौमुदी-महोत्सव

महाराज उदयन और महारानी वासवदत्ता के विवाह की प्रथम वर्षगाँठ के उपलक्ष में जब कार्तिकी पूर्णिमा के दिन कौशाम्बी में कौमुदी-महोत्सव का विराट् आयोजन किया गया था, उस समय कौशाम्बी स्वयं देवी वासवदत्ता की भाँति सुघर नववधू-सी प्रतीत होने लगी थी। उज्जयिनी के महाराज महासेन की ललित-लवङ्ग-लतिका-समान राजकुमारी वासवदत्ता ने एक वर्ष पूर्व शरद्-वधू के समान आह्लाद और कमनीयता लिए हुए इसी कौशाम्बी के अन्तःपुर में प्रवेश किया था। इसलिए उस वर्ष का कौमुदी-महोत्सव पौर-जानपदों ने बड़े समारोह से मनाने का निश्चय किया था। उस आयोजन से नगर भर में खरभर मच गयी। घर-घर, गली-गली सर्वत्र कौमुदी-महोत्सव की चहल-पहल थी। राजाज्ञा से समस्त नगरी कला-पूर्ण ढङ्ग से सजायी गयी थी।

रँगराती सन्ध्या ने जब विभावरी का रूप धारण किया तो महाराज उदयन रानी वासवदत्ता के साथ अन्तःपुर के बाहरी प्रकोष्ठ की चन्द्रशाला में जाकर आसीन हो गए। वहाँ पर चन्दन, हरिद्रक, पदुमकांष्ठ निर्मित एक कमनीय शय्या थी। उसके दोनों शिरों पर दो उपधान थे। ऊपर से दुग्ध फेन के समान धवल और कोमल प्रच्छाय-पट पड़े हुए थे। शय्या के कूर्च स्थान पर इष्टदेव की मूर्ति थी, पास ही वेदिका पर उपलेपन, सिक्थ-करण्डक ( मोमबत्ती ) सौगन्धिपुटिका ( इत्रदान ) मातुलुंगकी छाल और ताम्बूलवीटक रखे हुए थे। शय्या के अधस्तन फर्श पर पतद्ग्रह ( पीकदान ) रखा हुआ था। एक आस्तरण में चतुरङ्ग ( शतरञ्ज ) की गोट बिछी हुई थी। चारों ओर कुरंटक की मालाएँ लटक रही थीं। उन्मुक्त वातावरण था। नीलगगन में स्थित चन्द्रमा विहँस

रहा था, चन्द्रिका खिल-खिला रही थी। चन्द्र और चन्द्रिका की सिहरन, उनका कम्पन और हास्य देख कर उदयन के हृदय में एक मीठा प्रस्पन्दन आन्दोलित हो उठा। उन्होंने देवी वासवदत्ता के चिबुक को स्पर्श करते हुए कहा—देखो देवी, शरद् बधू आ गयी—ठीक उसी प्रकार जैसे साल भर पहले तुम मेरे जीवन क्षेत्र में आयीं थीं। प्रिये, उन्मद कामिनी की भाँति शरद् ऋतु कितनी सुहावनी, कितनी सुन्दर लग रही है। मेघावरोध परिमुक्त शशिवदना शारदी निशा ज्योत्स्ना का दुकूल और तारावलियों का आभूषण धारण किए हुए मुग्धा नायिका-सी प्रतीत हो रही है। शरद् बधू का स्वागत करने में प्रकृति व्यस्त और प्रफुल्ल है। फूले हुए काँस धरती को, चन्द्रमा रात को, हंस यमुना को, कमल सरोवर को, सप्तच्छद के पुष्प वनान्त को, मालती उपवन को शुक्लीकृत बना रहे हैं। और निहारो इधर यमुना की इस गति को। ऐसे गुमान से धीरे-धीरे बह रही है, मानों कटि-किंकिणी को सँभालती हुई तुम चली जा रही हो। मुझे तो ऐसा लग रहा है, मानो यमुना ही शरद् बधू बन कर बह रही है। कल्लोल करती हुई मछलियाँ यमुना की कटि-किंकणी भी बन रही हैं। तटवर्ती बकपंक्तियाँ मालाएँ बन रही है।

नील गगन में शरद्-साम्राज्य छाया हुआ है। शरद् बधू सम्राज्ञी-सी जान पड़ती है। रजत, शंख, मृणाल के समान स्वच्छ मेघ पानी बरसा कर हल्के-फुल्के हो गए हैं। इसीलिए पवन के सहारे इधर-उधर डोल रहे हैं। सच मानो प्रिये, भिन्नांजन प्रचय कान्ति गगन, बन्धूक पुष्पों के बिखरे हुए रजःकणों से रक्तिम धरती, पके हुए धानों से सम्पन्न खेत सहसा मेरे मन को डाँवाडोल बना रहे हैं।

और हाँ, अपने प्रमदवन के उस कोविदार की प्रफुल्लता को तो निगाह भर कर देख लो, जिस पर अगणित फूल खिले हुए हैं। जिसकी कोमल शाखाओं की फुनगियों और मनोज्ञ पल्लवों को पवन धीरे-धीरे चूम रहा है। कलियों में सिहरन भर कर उन्हें कँपा रहा है। पुष्पों

से बहती हुई मधु धारा को लोभी भौंरे मस्ती से चूस रहे हैं। भवन-दीर्घिका की छटा कितनी उन्मादिनी है। इसका जलकमल के पराग से लाल लाल हो रहा है। लहरों से जल-पक्षियों की चोंचें टकरा रही हैं। दीर्घिका के चारों ओर हंस, कदम्ब, सारस और कारण्डव पक्षियों के दल घूम रहे हैं।

मुझे ऐसा लग रहा है, कि शरद् वधू के अन्तःपुर की बनी हुई दीर्घिका को राजहंसी ने अपनी उन्मद चाल से तुम्हारी गति को, कमलिनी ने तुम्हारे चन्द्रमुख को, नीलकमल ने तुम्हारी मदभरी आँखों को, दीर्घिका की लोललहरियों ने तुम्हारी भौंहों को हरा दिया है। पुष्प-भार से झुकी हुई लतावल्लरियों ने आभरणयुक्त तुम्हारी भुजाओं की सुन्दरता छीन ली हैं। खिली हुई नयी मालती की कलियाँ तुम्हारी लज्जा-युक्त मुस्कराहट को विलज्जित कर रही हैं और शरद् का प्राकृतिक वैभव मुझे पदलुण्ठित-सा बना रहा है।

मुस्कराती हुई महारानी वासवदत्ता उठ कर चन्द्रशाला पर टहलती हुई बोलीं—आर्यपुत्र, शरद् सुषमा न तो मुझे लज्जित बना रही है और न पराजित, बल्कि यह तो मेरा शृंगार बन कर धरती पर उतर आयी है। शरच्चन्द्रिका की दीप्ति में तनिक आँखें भर कर मेरी ओर देखिए ? राजसी अलंकार इस समय व्यर्थ बन रहे हैं। प्रकृति के आभरण ही मेरी सुषमा चारुचन्द्र बन रहे हैं। घनी घुँघराली काली अलकों में नवमल्लिका के पुष्पाभरण हैं। कानों में मणिकर्णिकारों के स्थान पर नीलपद्म सुशोभित हो रहे हैं। पीन पयोधरों में केशर, कुटज, अगुरु पुष्पों के पराग का अवलेपन है। वक्ष पर अनवेधी मोतियों की माला है। शरद् की सुषमा चन्द्रमा की चमक छोड़ कर मेरे मुख पर आ गयी है। नील कमल मेरे असितलोचनों की कान्ति बड़े अनुराग से देख रहे हैं। उन्मद हंस मेरी कटि-किंकिणी की रुन-झुन सुन कर बेचैनी से टहल रहे हैं। मेरे अधरोष्ठ की लालिमा को पाकर बन्धुजीव के पुष्प खिसिया कर रो रहे

हैं। और यह देखो, से विकच कमलानना, फुल्लनीलोत्पलाक्षी श्वेतवसना उन्मदा शरद् वधू आप के मन में उमंगें भरने के लिए सशरीर मुझमें समा रही हैं।

यह कहते-कहते महारानी वासवदत्ता तनिक ठिठक गई तो उनकी अलकावली महाराज उदयन की कमनीय अँगुलियों से उलझ कर रह गयी। पीयूषवर्षी चन्द्रमा उन पर शीतल फुहारों की वर्षा करने लगा। नक्षत्रेश और कौशाम्बी नरेश दोनों मिल कर कौशाम्बी के अन्तःपुर की शरद् वधू का शृंगार कर रहे थे और नागरिक कौमुदी-महोत्सव मना रहे थे।

# कौशाम्बी के अन्तःपुर में कुसुमावचय-उत्सव

फागुन का महीना था, आनन्द और उल्लास भरा हुआ वसन्त धरती पर उतर चुका था, कोकिल की हूक भरी कूक दिग्-दिगन्त में फैल रही थी, वासन्ती वायु कुसुमित सहकारशाखाओं को कँपा रहा था। कौशाम्बी के अन्तःपुरवासी श्यामा, श्येन, शशघ्न, वंजुल, मयूर, श्रीकर्ण, चक्रवाक, चाष, खर, हारीत कपोत, भारद्वाज, कुलाल, कुक्कुट, पर्णकूट, चरक आदि पक्षी मद-विभोर होकर चहक रहे थे। अन्तःपुर की परिचारिकायें उन्मद, उत्फुल्ल-सी किन्तु व्यग्रभाव से इधर-उधर दौड़-धूप करती-हुई उद्यान-यात्रा की तैयारी कर रही थीं। सभी लाक्षा रंग से रंजित, काला-गुरु से सुवासित हल्की लाल रंग की साड़ियाँ और कुसुम्भी दुकूल धारण किये हुए थीं। कानों में नवीन कर्णिकार के फूल, अलकों में रक्त-अशोक पुष्प और वक्षःस्थल पर उत्फुल्ल नवमल्लिका की माला धारण किये हुए थीं। समुद्र-गृह में महाराज उदयन के पास बैठा हुआ विदूषक वसन्तक क्वणित नूपुरों की रुन-झुन सुनकर चौंक कर खड़ा हो गया। घबड़ा कर महाराज ने पूछा वयस्य, क्या बात है? इतने में महारानी वासवदत्ता की सहचरी मदनिका ने वहाँ पहुँच कर कहा—'महाराज की जय।' यह सुनकर वसन्तक पीछे मुड़ कर बोला—अरे मदनिका तुम? मैंने समझा था कि घूँघुर बाँधे हुई कोई हिरनी, हम पर आक्रमण करने आ रही है। महाराज उदयन हँसने लगे और मदनिका ने वसन्तक की ओर एक शरारत भरा इशारा करके सिर झुका कर महाराज से निवेदन किया—'महारानी अन्तः पुर की रानियों और परिचारिकाओं समेत 'कुसुमावचय' उत्सव के लिए तैयार हैं, महाराज का जो आदेश हो।' यह सुनते ही महाराज

उदयन हड़बड़ा कर उठे और बोले—'मदनिके, देवी से कह दो कि हम भी तैयार हैं।'

महाराज उदयन महारानी वासवदत्ता, पद्मावती, प्रियदर्शिका और रत्नावली, इन चारों रानियों तथा सहचर-सहचरियों और संभ्रान्त नागरिकों के साथ मध्याह्न से पूर्व 'सुयामुन' (वर्तमान सुजावन देवता, कौशाम्बी से १६ मील पूर्व) पहुँच गये। यमुना की अलसायी हुई रसीली लहरें सुयामुन महल को अंकस्थ बनाये हुई थीं। मलयानिल के झोंकों से प्रकम्पित मंजुल लतायें उन्हें भेंट रही थीं। फूले हुए पलाश, काञ्चनार, आरग्वध, सिन्दुवार, शिरीष, मल्लिका तथा तृण, शाद्वल से परिवेष्टित भूमि चित्र की भाँति कमनीय और मनोमुग्धकारी थी। पुष्प-पल्लवों के भार से झुके हुए वृक्ष ऋतुराज का अभिवादन सा कर रहे थे। नवमल्लिका का रसपान कर मतवाली बनी हुई भ्रमरियाँ कल-गान कर रही थीं। दक्षिणी पवन के इशारे पर नाचती हुई वंजुल-लतायें विमुग्ध बना रही थीं। किंशुक कुसुमों से ढकी हुई उद्यान-भूमि रक्तांशुका नव वधू-सी जान पड़ती थी। उन्मत्त पुंस्कोकिलों का मधुर कूजन और भ्रमरों के मदिर गुंजन कुलवधुओं के भी सलज्ज विनयावनत हृदयों को क्षण भर के लिए पर्याकुल बनाने में समर्थ हो रहे थे। ऐसा जान पड़ता था कि सुयामुन के मकरन्द उद्यान में बाल और यौवन अवस्था को लिए हुए वसन्त बिहँस रहा है!

जिस प्रकार वासन्ती प्राकृति अपने आप को निःशेष भाव से उद्बुद्ध कर रही थी, उसी प्रकार महाराज उदयन उनकी चारों रानियों ने भी मदिरायित मलय पवन का आनन्द-उपभोग हृदय खोल कर किया।

## काव्यशास्त्र विनोद

सुयामुन प्रासाद के शानदार प्रकोष्ठ में भगवती सरस्वती के पूजन का आयोजन किया गया। उच्च वेदिका पर स्थापित वाणी की कलापूर्ण

मूर्ति के समक्ष वेदिका पर सर्वतोभद्र की रचना की गयी। माल्यचन्दन, उपलेपन, धूप, दीप, नैवेद्य आदि से महाराज उदयन ने रानियों समेत वाणी का पूजन, स्तवन किया। इसके पश्चात् साहित्यिक मनोविनोद के लिए महाराज उदयन सिंहासन पर बैठ गये। चारों रानियाँ कौशेय यवनिकाओं के अन्दर बैठ गयीं। दरबारी लोग अपनी-अपनी पदवी और मर्यादा के अनुसार निश्चित आसनों पर बैठ गये। वीणा की मधुर झनकार से साहित्यिक गोष्ठी प्रारम्भ हुई। उस काव्य-शास्त्र विनोद में कवियों को समस्यायें दी गयीं और उन्हें यह चेतावनी भी दी गयी कि समस्यापूर्ति में टवर्ग, ऋ, ष, स, ह और संयुक्ताक्षर का प्रयोग न किया जाय। एक ओर रससिद्ध कवि समस्यापूर्तियाँ सुना रहे थे, दूसरी ओर साहित्यिक विद्वान् अनेक विन्दुओं में अकार, उकार आदि मात्राएँ लगा कर उससे पूरे श्लोक का उद्धार करते हुए 'विन्दुमती' नाम की 'काव्यात्मक क्रीड़ा' कर रहे थे। कुछ लोग प्रहेलिका द्वारा काव्य-रस ले रहे थे। चित्रकार वर्ग चित्र-फलकों पर चित्रकला के नूतन प्रयोग कर रहे थे। इस प्रकार राजसभा के सातों अंग विद्वान्, कवि, चित्रकार, संगीतज्ञ, इतिहासज्ञ, पुराणज्ञ और विदूषक-अपनी-अपनी रुचि के अनुसार अपने-अपने क्षेत्र में काव्य-शास्त्र विनोद कर रहे थे। अपराह्न होते ही वन-विहार के लिए महाराज उदयन अपनी चारों महारानियों और सहचरियों समेत मकरन्द उद्यान गये। वहाँ 'क्रीड़ैकशाल्मली विनोद' (जो शाल्मली वृक्ष के नीचे खेला जाता था) अभ्यूषखादनिका (गेहूँ, जौ, चना, मटर की हरी फलियों को भून कर होला खाना) पाशा, चतुरंग आदि क्रीड़ायें की गयीं।

## कुसुमावचय

जब सूर्य अस्ताचल जाने की तैयारी कर रहे थे, उसी समय महारानी वासवदत्ता क्रीड़ाविरत होकर महाराज उदयन से बोलीं—'स्वामिन् अति-

कुसुम्भी रंग से रंगी हुई रेशमी साड़ी और दुकूल से ढके हुए अंग-प्रत्यंग से रत्नावली का यौवन चुपके-से झाँक रहा था।

—चित्रकार वीरेन्द्र सिंह

विलम्ब हो गया और आज का मुख्य उत्सव 'कुसुमवचय' अभी अवशेष है।' ससम्भ्रम उदयन उठ कर बोले, 'तो देवि, किस सौभाग्यशालिनी को अपनी मुख-मदिरा से सिंचित कर वकुल वृक्ष को उत्फुल्ल करने का आदेश आप दे रही हैं?'

सस्मितवदना वासवदत्ता झट बोल उठी, 'हम सब में से अल्पवय, परमसुन्दरी रत्नावली से ही यह कृत्य सम्पादन कराने की मेरी इच्छा है।' प्रसन्नता से तालियाँ बज उठीं।

मुख्य-सहचरी कांचनमाला ने रत्नावली के पास जाकर उससे वकुल-वृक्ष के समीप तक चलने का निवेदन किया। रत्नावली प्रसन्नता और संकोच से सिकुड़ी जा रही थी। मदनिका ने उसे खाने के लिए ताम्बूल के दो बीटक दिये। संवाहिका क्षौम, कौशेय और रांकव वस्त्र पहना कर आभरण पहनाने लगी। उसने कानों में कर्णफूल, कुण्डल आदि आवेध्य आभरणों को पहनाया। बाहूमूल में अंगद, नितम्ब प्रदेश में श्रोणी सूत्र, मणिबन्ध में उर्मिकाकटक, सिर में चूड़ामणि, शिखादढ़िका पहना कर उद्वर्तित, वितत, संघास्य, ग्रंथिमत, अवलंबित मुक्तक, मंजरी, स्तवक-ये आठ प्रकार की मालायें पहनायीं, फिर कस्तूरी, कुंकुम चन्दन, कर्पूर, अगुरु, कुलक, दन्तसम, पटवास, सहकार, अलक्तक, अंजन, गोरोचना आदि मण्डन द्रव्यों से अंग-प्रत्यंग का शृङ्गार किया। इस प्रकार रत्नावली का यौवन शोभा का अनुप्राणक बन गया। उसके अंग-प्रत्यंग में पुलक, विपुलता और सौष्ठव फूट रहा था। कुसुम्भी रंग से रंगी हुई रेशमी साड़ी और दुकूल से ढके हुए अंग-प्रत्यंग से रत्नावली का यौवन चुपके से झाँक रहा था। केशर से रंगी हुई महीन कपड़े की चोली से कुचद्वय बरजोरी कर रहे थे। चंचल, काली, घुँघराली अलकों में अशोक के फूल और खिली हुई नवमल्लिका के फूल बड़े सुहावने लग रहे थे। परिचारिकाओं से घिरी हुई रत्नावली वकुल वृक्ष की ओर धीरे-धीरे चली जा रही थी। उसके स्वर्ण कमल के समान सुहावने और चित्रांकित मुख

पर फैली हुई पसीने की बूँदें ऐसी जान पड़ती थीं मनो रत्नों के बीच मोती जड़ दिये गये हैं। आँखों की कोर से वह महाराज उदयन की ओर कभी-कभी देख कर उन्हें अधीर भी बना देती थी। महारानी रत्नावली मदन-विह्वला हो अलसायी हुई-सी जान पड़ती थी, फिर भी उनकी भ्रूभंगिमायें चोट करती जा रही थीं। अतिमुक्त लताओं को चूमते हुए भौंरों को देख कर उनका मन डांवाडोल हो रहा था। वासन्ती हवा के झोंके खाकर जब कभी उनका अंचल उघर जाता तो सरस परिचारिकायें मधुर परिहास करने से चूकतीं न थीं। मस्त होकर मीठे स्वर में कूकने वाला पुंस्कोकिल रत्नावली के चित्त को अनियंत्रित बना रहा था और सरस परिचारिकाओं की रसभरी बातों की खिल्ली उड़ा रहा था। लुभावनी सन्ध्या, मनभावनी भौंरों की गुंजार जगे हुए कामदेव के लिए रसा-यन बन रहे थे। कुच भार से झुकी हुई, शरमायी हुई, खोयी हुई-सी महारानी रत्नावली वकुल वृक्ष के समीप पहुँच गई। मरकत मणिजटित पीठ पर महाराज उदयन बैठ गये, उनके पास स्वर्ण-पीठ पर ब्राह्मण विदूषक। सामने पीताम्बर परिवेष्टित स्वर्णकलश, जिस पर रसालमंजरी, किंशुक-कुसुम और पीताभ अक्षत पुंज रखे हुए थे। ब्राह्मण वसन्तक के स्वस्तिवाचन के साथ ही महारानी ने मदनपूजा की फिर केशर मिश्रित आम्री मंजुल मंजरी का तिलक महाराज के मस्तक पर लगा कर पुष्पांजलि उनके चरणों में बिखेर दिया। कांचनमाला द्वारा वकुल वृक्ष की ओर किये गये संकेत को समझ कर महारानी ने उसे अपनी मुख मदिरा से ज्यों ही सिंचित किया त्यों ही वकुल उत्फुल्ल होकर कुसुम भर बन गया। फूलों से लदी हुई वकुल की एक टहनी पकड़ अंचल सँभाल कर महारानी ने उसे ज्यों हिलाया, तो पग-नूपुर बज उठे, फूलों से उनका अंचल भर गया। महाराज उदयन ने अंचल खींच लिया—पुष्प बिखर गये और सभी रानियाँ और परिचारिकायें कुसुमचयन करने लगीं।

•

# कौशाम्बी के अन्तःपुर में मदन-महोत्सव

दो हजार वर्ष पूर्व वत्सदेश की राजधानी कौशाम्बी का वैभव मध्याह्न के सूर्य के सामान प्रोज्ज्वल और प्रदीप्त था। अनिन्द्य सुन्दरी महारानी वासवदत्ता और कामायनी कौशाम्बी नगरी दोनों महाराज उदयन जैसा स्वामी पाकर कृतकृत्य हो रही थीं और महाराज उदयन और रानी वासवदत्ता राजधानी कौशाम्बी से आप्त बन रहे थे।

कौशाम्बी का राजभवन सुख, सौन्दर्य और ऐश्वर्य से अहर्निश जगमग-जगमग रहता। बारहों मास वसन्त का ही अनुमान होता, किन्तु होली से लगा कर चैत पर्यन्त जब तक मदनोत्सव रहता कौशाम्बी-कौशाम्बी बन जाती। उन दिनों इन्द्र की अमरावती और कुबेर की अलकापुरी भी कौशाम्बी के सामने फीकी जान पड़ती थीं। चैत शुक्ल त्रयोदशी के दिन मदन-महोत्सव मनाने के लिए कौशाम्बी नगरी के नर-नारी मदोन्मत्त हो उठते। करतलध्वनि, मृदंग घोष, मधुर संगीत से समस्त कौशाम्बी प्रतिध्वनित हो उठती।

एक बार कौशाम्बी में मदनोत्सव मनाया जा रहा था। पुरुष और स्त्रियाँ वासन्ती रंग से रँगे हुए वस्त्र पहिने गाते बजाते एक दूसरे पर कुंकुम, अबीर फेंक रहे थे। महाराज उदयन और उनके सखा वसन्तक दोनों केसरिया वस्त्र पहने राजमहल की सब से ऊँची अटारी पर बैठे पुरवासियों के आमोद-प्रमोद को देख रहे थे। मधु और मदन से उन्मत्त नागरी युवतियाँ रंगभरी पिचकारियों की बौछारों से नागर युवकों को लथपथ करने में निरत थीं। कौशाम्बी की प्रत्येक वीथी, रथ्या, प्रतोली, पथ और सभी राजपथ चंग, तूर्य, मृदंग ध्वनि से शब्दायमान थे। अगर, तगर, केशर, कस्तूरी, चंदन, कुंकुम आदि इतना उड़ा कि अंधेरा

छा गया, दिशाएँ रक्तवर्ण हो गयीं। कौशाम्बी रंगीन बन गयी, इधर अबीर, गुलाल और रंग के फौव्वारे राजपथों और अट्टालिकाओं से छूट रहे थे, उधर राजमहल के प्रांगण का खुला हुआ फौव्वारा युवतियों को जलदान दे रहा था। अपनी-अपनी पिचकारी भरने की होड़ लगी हुई थी। नगर की युवतियाँ राजमहल के फौव्वारे में से पानी भरने आतीं, आपस में झगड़तीं, मचलतीं और पिचकारियों की मार करतीं, जिससे गालों में लगी हुई अबीर और माथे का सिन्दूर धुल-धुलकर आँगन को रक्तिम बना रहा था।

वेश्याओं के मुहल्ले में तो हुरदंग मची हुई थी। रसिक नागर सुन्दर वेश्याओं के कमनीय शरीर में ताक-ताक कर पिचकारियाँ चलाते, वे सीत्कार कर सिहर उठतीं। इस प्रकार मदनोत्सव में नगर भर मदोन्मत्त हो उठा और आमोद-प्रमोद मर्यादा के बाहर हो गया।

रनिवास की दासियाँ तो आत्म-विभोर हो अपने-पराये को भूल रही थीं। हाथ में रसाल मंजरी लिए हुए झुक-झुक, झूम-झूम द्विपदी खंड का गान करती हुई वे नाच रही थीं। सभी मदपान से उन्मत्त थीं। नाचते-नाचते उनकी वेणी शिथिल होकर बिखर रही थी, पगनूपुर, कटि-किंकिणी के मंजु घोष मदोन्मत्त बना रहे थे।

नगर और राजभवन के नागर-नागरियों की यह प्रेम-विह्वलता, प्रसन्नता देख महाराज उदयन आनन्द सिन्धु में गोते लगा रहे थे। वे अपने मन में सोच रहे थे, कि मुझसे बढ़कर भाग्यशाली कौन होगा? वासवदत्ता जैसी अनिन्द्य सुन्दरी गुणवती रानी मिली, यौगन्धरायण जैसा विज्ञमन्त्री और भगवती की कृपा से मुझे वह बाहुबल मिला जिससे अपनी प्यारी प्रजा की रक्षा करने में समर्थ हूँ।

महाराज इन्हीं विचारों में मग्न हो मुस्करा रहे थे। उधर महारानी वासवदत्ता मदनपूजा की तैयारी मदनोद्यान में कर रही थीं। रक्त-अशोक के नीचे स्वर्ण कलश स्थापित किया गया, कलश दुग्धफेन सदृश

कौशेयाम्बर से ढक दिया गया। फिर उसके ऊपर एक ताम्रपात्र रखा गया और उसके ऊपर कदली-दल बिछा कर श्वेत चन्दन छिड़क कर कामदेव और रति की मूर्ति बैठायी गयी। इसके बाद महारानी ने अपनी दो दासियों को महाराज को बुला लाने के लिए भेजा और इधर परम-सुन्दरी सखी सागरिका को राजमहल भेज दिया सारिका की रक्षा का बहाना करके। क्योंकि रानी वासवदत्ता को सन्देह था कि महाराज सागरिका के रूप-यौवन को देखकर मुग्ध हो जायँगे।

दोनों दासियाँ आम्रमंजरी हाथ में लिए द्विपदींखण्ड गाती और मोहिनी नृत्य करती हुई महाराज की चन्द्रशाला की ओर उन्हें बुलाने चलीं, परन्तु वे उत्सव की शोभा-सजावट से इतनी विमुग्ध थीं कि नाचने गाने में ही लीन रहीं, महाराज को बुलाना ही भूल गयीं। महाराज उदयन अपने सखा वसन्तक के साथ बैठे हुए दोनों सखियों के नाच-गान, हाव-भाव, कटाक्ष को देख-देख मुग्ध हो रहे थे। वसन्तक से न रहा गया उसने महाराज से निवेदन किया कि मेरी भी इच्छा होती है—इनके साथ नाचने की। महाराज ने कहा—अच्छा जाओ, नाचो देखें तुम कैसा नाचते हो?

वसन्तक 'जो आज्ञा' कहकर मंच से नीचे उतरा और दोनों दासियों के बीच जाकर नाचने लगा। विदूषक (मसखरा) वसन्तक को अपने बीच पाकर दोनों दासियाँ नाचना भूल कर उसे ही ढकेलने लगीं। बड़ी कठिनाई से वसन्तक उनसे छूट कर महाराज के पास भाग आया और बोला—बाज आया नाचने से। भागता न तो चुड़ैलें कचूमर निकाल लेतीं। महाराज हँसने लगे।

वसन्तक के भाग जाने के बाद दोनों दासियों को महाराज को बुला कर ले जाने का स्मरण आया। वे झट महाराज के मंच के समीप पहुँचीं और सिर झुका कर एक ने कहा—महाराज की जय हो। देवी की आज्ञा—(कुछ लज्जित हो और हँसकर) नहीं स्वामिन् निवेदन है......!

महाराज ने हँसते हुए बड़े हर्ष से उस दासी को बीच में ही रोक कर कहा—हाँ, हाँ, मदनिके, जो पहले कहा है वही ठीक है। आज मदनोत्सव है, आज महारानी की आज्ञा यही कहना उचित है।

मदनिका ने कहा—स्वामिन्, देवी मदनोद्यान में विराज रही हैं। मदनपूजा की तैयारी हो चुकी है केवल आपकी प्रतीक्षा है। उनका निवेदन है, कि महाराज पधारें और देवी की पूजा स्वीकार करें।

महाराज ने बड़ी उत्कण्ठा से कहा—बहुत अच्छा, जाकर कह दो कि हम अभी आते हैं।

मदनोद्यान की शोभा अपूर्व थी, सहस्रों युवतियों से घिरी हुई देवी वासवदत्ता साक्षात् रति-सी मालूम पड़ती थीं। रक्त अशोक के नीचे स्फटिक रत्न के आसन पर महाराज को बैठाया गया और विदूषक मित्र वसन्तक को दूसरे आसन पर बैठाया गया।

रानी ने पहले कामदेव की पूजा की, फिर प्रधान परिचारिका कंचन-माला ने रानी के सुन्दर कोमल हाथों में अबीर, कुंकुम, चन्दन और सुगन्धित पुष्प दिये और रानी ने उस पुष्पाञ्जलि को महाराज के चरणों में बिखेर दिया। वैतालिकों ने स्वस्तिवाचन किया। ब्राह्मण वसन्तक को यथाविधि दक्षिणा दी गयी।

इस तरह उत्सव—पूजा व्यतीत होते-होते सुहागभरी सन्ध्या आ गयी। चन्द्रमा खिल उठा, मदनोद्यान विहँस उठा और महाराज ने महारानी के साथ वह रात्रि वहीं व्यतीत की।
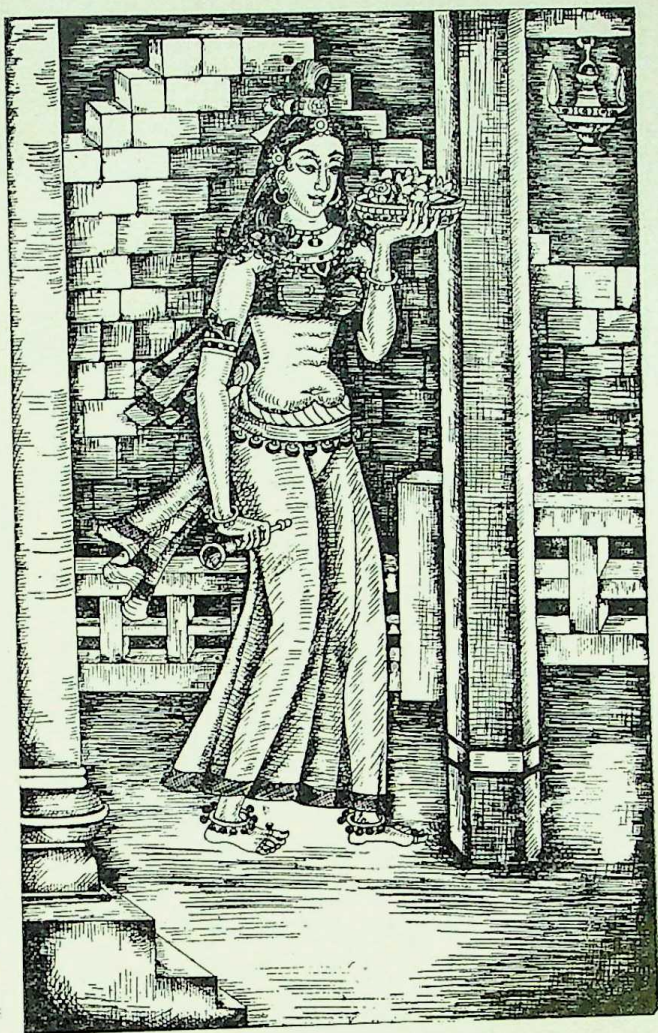
देवी वासवदत्ता वस्त्रालंकार से सुसज्जित होकर मदन-पूजा के लिए मकरन्दउद्यान की ओर चलीं।

—चित्रकार वीरेन्द्र सिंह

# कौशाम्बी के अन्तःपुर में जलक्रीड़ा-विनोद

वसन्त बीतते ही ग्रीष्म-ऋतु के आगमन की सूचना पश्चिमी बयार ने आग बरसाते हुए दी। धरती भर की प्रकृति विक्षुब्ध होकर अपने निःश्वास से सरिता, सरोवरों और तड़ागों का जल सोखने लगी, वनस्थली के कोमल कान्त लता-पुष्प मुरझाने और झुलसने लगे। प्रकृति की यह सब हरकतें कौशाम्बी के अन्तःपुर की सुन्दरियों को बरदाश्त न हुईं, गर्मी, ज्वाला, बवण्डर आदि सब गर्मी ऋतु के कार्य उनकी प्रकृति के प्रतिकूल थे। इसलिए ग्रीष्म की प्रकृति और कौशाम्बी के अन्तःपुर की प्रकृति के बीच तूष्णीं युद्ध छिड़ गया। ग्रीष्म उसे झुलसाना चाहती थी और वह वसन्त को ही अपनी अङ्क लक्ष्मी बनाए रखना चाहता था। प्रति वर्ष ग्रीष्म और कौशाम्बी का यह प्राकृतिक संघर्ष चलता, किन्तु कौशाम्बी के अन्तःपुर के धारागृह, समुद्रगृह, सुयामुन महल, भवन दीर्घिका, प्रमद वन और वहाँ रहने वाले हंस, सारस, कारण्डव, चातक, चकोर, मयूर, कपोत, शुक, सारिका आदि पक्षि-समूह ग्रीष्म को मुँहकी खिलाने में कौशाम्बी की पूरी सहायता किया करते थे।

यह कहना अनुचित न होगा, कि प्रति वर्ष ग्रीष्म कौशाम्बी को पराजित करने के लिए पूरी शक्ति के साथ चुपचाप नहीं बल्कि हुँकार और हाहाकार के अगणित स्वर लेकर वहाँ प्रविष्ट होता था। उस समय हवा आग बरसाया करती थी। आँधी, तूफ़ान और बवण्डर से उठायी गयी धूल से धरती आसमान एक में मिल जाते। सरोवरों का पानी सूखने लग जाता, यमुना का भी पानी कृश बनता हुआ दिखायी पड़ता था। कौशाम्बी नगरी का सारा वातावरण अग्नि ज्वालाओं से धधकाया हुआ-सा जान पड़ता था। किन्तु अन्तःपुर वासिनी सुन्दरियाँ ग्रीष्म की

इस चुनौती को बड़ी शान से स्वीकार किया करती थीं। वे सब अपने विलास के अमोघ साधनों से ग्रीष्म को निराश करके ही छोड़ती थीं। अन्तःपुर के तुंगवातायन में बैठी हुईं राजमहिषी कृशकाय यमुना को देख कर तथा सूखते हुए सरोवर की लोटती-पोटती, आकुल-व्याकुल, तृषित मछलियों को देखकर तुरन्त अन्तःपुर की परिचारिकाओं को ग्रीष्म-ज्वाला से मुकाबिला करने के लिए उद्यत हो जाने का आदेश देतीं, आज्ञा पाते ही सर्पनिर्मोक तुल्य महीन, अहिफेन सदृश श्वेत वस्त्र, कर्पूर का चूर्ण, चन्दन का अवलेप, पाटल पुष्पों के स्तवकों से सजे हुए धारागृह, चमेली की सुगन्धित मालाएँ चाँदनी रात आदि सब को एकत्र कर सन्नद्ध कर दिया करती थीं। इसके बाद अन्तःपुर की महारानियों का शीतल-शृङ्गार किया जाता था। शिरीष कुसुमों से उनके कान ढक दिये जाते थे, चन्दन, अवलेप से शरीर का अवमर्दन किया जाता और पुष्प व्यंजनों से शीतल बयार बहायी जाती थी। उस समय सारा अन्तःपुर शीतल शृंगार और प्रसाधन से हिमानी बन जाता। सभी अन्तःपुर वासिनी-विलासिनियों के साथ महारानियाँ समुत्सुक होकर धारा-गृह में जलक्रीड़ा के लिए प्रस्थान करती थीं।

चन्दन, केशर, कस्तूरी के आमोद से तथा विलासिनी स्त्रियों के शरीर पर लगे हुए अंगराग से धारागृह का जल इन्द्रधनुष की भाँति रंग-बिरंग बन जाया करता था। युवतियाँ जब एक दूसरे पर जल-स्फालक द्वारा छींटाकशी करतीं तो आकाश में उठते हुए जलकणों से मोतियों की लड़ियाँ बिछ जाती थीं। कामिनियाँ एक दूसरे पर छींटे मारतीं और सखियाँ धारागृह में उन्हें प्रभावित और प्रेरित करने के लिए तुमुल मृदङ्ग घोष किया करती थीं। जिसे मेघ गर्जन समझ कर कभी-कभी अन्तःपुर के मयूर वर्षागमन की भ्रान्ति में केका ध्वनि करने लगते और मयूरियाँ नृत्य-निरत हो जाया करती थीं।

आपस की रगड़-झगड़ में कला-विलासिनियों के कानों में लगे हुए

शिरीष कुसुम खसक-खसक कर पानी में गिर जाया करते थे, जिन्हें मछलियाँ सेवार समझ कर खाने के लिए दौड़ पड़ा करती थीं। अन्तःपुर की सुन्दरियों की इस जलक्रीड़ा में मनोरम भाव उत्पन्न करने के लिए कभी-कभी महाराज उदयन और उनके सखा विदूषक वसन्तक जब शामिल हो जाते तब तो क्रीड़ा सरोवर वारविलासिनी-सा प्रतीत होने लगता। उनके जल-केलि कल्लोल से दिङ्मण्डल मुखरित हो उठता। ग्रीष्म प्रकृति तीव्र ताप के उत्ताप को शीतल बनाने के लिए बाध्य हो जाती, वह अपनी पराजय स्वीकार कर कौशाम्बी के अन्तःपुर से विदा हो जाती।

महाराज अपनी रानियों और उनकी सखियों के साथ जलकीड़ा करते हुए कभी शीतल विनोद में विजयी होते तब तो विदूषक वसन्तक के जान की आ पड़ती। खिसियाई हुई रानियाँ उसे ही पकड़ कर कभी जलमुर्ग बनातीं, कभी शाखामृग बना कर उस पर जल सेचन करतीं और कभी मगर मच्छ बनाकर उसकी पीठ पर किसी परिचारिका को बैठा कर लक्ष्मी का स्वांग करतीं। विदूषक जान बचा कर चिल्लाता हुआ जब भाग निकलता तो अन्तःपुर में खरभर मच जाती। चटुल परिचारिकाओं द्वारा रानियों के संकेत से सताये हुए ब्राह्मण विदूषक को मनाने के लिए जब देवी वासवदत्ता मीठे-मीठे पकवान लेकर उसे खोजने लगतीं तो वह अन्तःचतुःशाल की देहली में कभी कराहता हुआ, कभी बड़-बड़ाता हुआ उन्हें पड़ा मिलता। देवी वासवदत्ता का सहज स्नेह पाकर वह भरपेट पकवान खाकर डकारता हुआ और नाम ले-लेकर चेरी-परिचारिका को फटकारता हुआ महाराज के बाहरी प्रकोष्ठ में जा पहुँचता। उसकी इस रीझ-खीझ से भी गर्मी का उत्ताप अन्तःपुर को प्रतप्त नहीं कर सकता था।

इस प्रकार ग्रीष्म के विनोद कौशाम्बी के अन्तःपुर को सदा शीतल और स्निग्ध बनाया करते थे।

# कौशाम्बी के अन्तःपुर में प्रेङ्खा-विलास

ग्रीष्म ऋतु के बीत जाने पर वर्षा ऋतु आयी अपने साथ वर्षा मङ्गल लेकर। कौशाम्बी पुलक उठी, यमुना गर्भवती नायिका-सी प्रतीत होने लगी। नवीन मेघ उमड़-घुमड़ कर सतत वारिधारा से धरती को आर्द्र बनाने लगे। दिग्वधुएँ अपनी चपल विद्युल्लताओं से जन-मन को मोहित करने लगीं। वन भूमि कुटज पुष्पों से, सरिता-सरोवर पानी की बाढ़ से भर गए।

कुटज, कदम्ब, कुमुद, कमल के साथ कलापी ने वर्षा मङ्गल मनाने की तैयारियाँ की। केका ने अपनी ध्वनि से वर्षा मङ्गल की घोषणा की। मदमाती कोकिला ने अपनी कुहू ध्वनि से उसका अनुमोदन किया तो सारस, कारण्ड, चातक, चक्रवाक ने अपनी ध्वनियों को ताल-स्वर भर कर झूम-झूम कर वर्षा का अभिवादन किया। प्रकृति के पारिपार्श्वकों द्वारा प्रारंभ किया गया वर्षा मङ्गल कौशाम्बी के अन्तःपुर में रखे हुए मृदङ्ग, भेरी, पटह और गजविमोहिनी, घोषवती वीणाओं के स्वरों में षड्ज, ऋषभ, गान्धार आदि सप्तस्वरों को भरता हुआ व्याप्त हो गया। सारा अन्तःपुर सौन्दर्य से भर गया। भवनदीर्घिका के कलहँसों के गले में बँधी हुई घंटियों और हँसियों के पगनूपुर की रुन-झुन से प्रमदवन मुखरित हो गया। मेघ निःस्वन सुन कर अन्तःपुर की वाटिका मुकुलित और प्रफुल्लित हो गयी। प्रेङ्खादोला का उत्सव मनाने की तैयारियाँ शुरू हो गयीं, परिचारिकाओं ने अशोक, कदम्ब की शाखाओं में रेशमी डोरियों के फन्दे डाल कर मणि मुक्ताओं से जटित झूले डाल दिए। दोलोत्सव शुरू हुआ। अन्तःपुर की सुकुमारियाँ, सुन्दरियाँ और परिचारिकाओं ने कोकिल कंठों से मेघ-मल्हार गा-गाकर राज महिषियों के हृदय को आन्दो-

लित करना प्रारम्भ किया। झूला गीत सुन-सुन कर सुभग सलोनी रानियाँ फिर न रह सकीं। उत्सुकता इतनी बढ़ी कि शृंगार प्रसाधन भी भूल गयीं। तुङ्ग वातायन से उतरना उनके लिए कठिन हो रहा था, ऐसा जान पड़ता था कि कूद-फाँद कर वाटिका के दोलोत्सव में शामिल होना चाहती हैं। रानियाँ झूला झूल रही थीं, सखियाँ गीत गा रही थीं, वातावरण में औत्सुक्य और मनोहर भावों का सजग संचार था। मेघदूत ने मङ्गल ध्वनि का सन्देश दिया तो मालती पुष्प मुस्कराने लगे, झूम-झूम कर कदम्ब अपना पराग बिखेरने लगा। पपीहा ने 'पी' 'पी' की रट लगाई, कलापी ने केका ध्वनि की, कोकिल ने अपनी कुहू-कुहू से झूला झूलती हुई रानियों को उन्मत्त बना दिया।

प्रमदवन का यह प्रेङ्खा-विलास मानसरोवर से उड़ कर जाते हुए हँसों ने गगन से निहारा, महाराज उदयन ने विदूषक वसन्तक के साथ माधवी मण्डप में छिप कर निहारा। महाराज ने वसन्तक से कहा—सखे, ऐसा जान पड़ता है मानो प्रेङ्खा दोला धरती और आकाश के मिलन की कड़ी है। वसन्तक से न रहा गया, उसने अपने गर्दभ स्वर से मेघ मल्हार का ज्यों ही आलाप छेड़ा, झूलती हुई रानियाँ चौंक उठीं। एक सखी ने कहा—यह वसन्तक का चीत्कार है, कहीं यहीं छिपा हुआ है। दो परिचारिकाएँ उसे पकड़ने के लिए दौड़ीं—तो देखती हैं कि महाराज भी वहीं छिपे बैठे हैं। आर्य पुत्र की जय हो—कह कर परिचारिकाएँ रुक गयीं, महाराज को हँसी आ गयी जब वसन्तक 'सखे बचाओ इन चुड़ैलों से' कह कर—उनसे चिपक गया। हँसती हुई परिचारिकाएँ वापस आ गयीं और सन्धि पाकर इस भय से कहीं देवी वासवदत्ता की नजर न पड़ जाय, महाराज उदयन निकल भागे। उन्हीं के पीछे-पीछे भागते हुए वसन्तक का उत्तरीय कंसरैया के झुरमुट से उलझ गया। उलझन को सुलझाते हुए वसन्तक भी उलझ गया इतने में दोनों परिचारिकाओं ने उसे पकड़ कर कहा—चलो महाराज, देवी वासवदत्ता बुलाती हैं।

किस लिए ? वसन्तक के ऐसा पूछने पर दासियों ने कहा—तुम्हारी चीपों-चीपों की ध्वनि से प्रसन्न होकर पुरस्कृत करने के लिए। वसन्तक ने पहले तो ऐंठ दिखायी पर जब मुक्त होने की आशा न रही तो लगा गिड़गिड़ाने। दासियों के हाथों के बन्धन हँसने से शिथिल हो गए और वह छूटते ही भाग खड़ा हुआ। वे हाथ मलती रह गयीं। प्रेङ्खा-विलास खत्म हुआ।

# महाराज उदयन की दिनचर्या

ब्राह्म मुहूर्त्त में बन्दी जनों द्वारा स्तुतिगान किये जाने पर महाराज उदयन शय्या त्याग कर माँगलिक द्रव्यों के दर्शन और स्पर्श करते थे। शौच, मुख प्रक्षालन आदि क्रियाओं से निवृत्त होकर सुगन्धित द्रव्यों और औषधियों से सुवासित दन्त धावन से दाँत साफ किया करते थे। इसके बाद सुकुमार कला विशारद परिचारक द्वारा चन्दन आदि अनुलेपन द्रव्यों से शरीर भर में उपलेपन कराते, फिर उनके केशों को धूप से धूपित किया जाता था, कुंचित केशों को सँवारा जाता था, चम्पक, जाती, मालती पुष्पों की मनोहर और सुगन्धित मालाएँ धारण करते थे। परिधान और उत्तरीय वस्त्र धारण कर राज्य के आवश्यक कार्यों को देखते हुए मध्याह्न से पूर्व स्नानागार में चले जाते थे। संगमर्मर की चौकी में बैठ जाते थे, वहीं पास ही स्वर्ण कलशों में सुगन्धित जल भरा रहता था। उस समय एक परिचारिक आमलक का कल्क केशों में मलती और दूसरी परिचारिका शरीर में सुवासित तैल का मर्दन करती थी। तेल मालिश हो जाने के बाद महाराज उठ कर जल से भरी हुई द्रोणी में थोड़ी देर तक बैठे रहते, फिर वहाँ से आकर चौकी पर बैठ जाते। परिचारिकाएँ उनके शिर पर सुगन्धित जल की धाराएँ छोड़तीं। स्नान के बाद सूखे वस्त्र से शरीर का प्रक्षालन करने के बाद परिचारिकाएँ हट जाती थीं तब महाराज सर्प निर्मोक ( साँप की केंचुल ) के समान श्वेत धौत वस्त्र और उत्तरीय धारण किया करते थे। फिर पूजा घर में आकर सन्ध्या, तर्पण आदि धार्मिक कृत्यों का सम्पादन करते थे। पूजन, अर्चन समाप्त होने के बाद मध्याह्न में भोजन करते थे। भोजन के अन्त में मधुर वस्तु को खाया करते थे। भोजन कर चुकने के बाद ताम्बूल सम्वाहक उन्हें ताम्बूल

बीटक प्रदान करता था, जिसे खाकर दिवाशय्या के लिए शयन कक्ष में वे प्रवेश करते थे। शय्या पर लेटे-लेटे शुक-सारिकाओं से मनोविनोद करते, पीठमर्द, विद्विदूषक भी वार्तालाप करने के लिए आ जाया करते थे। इसके बाद सो जाते थे।

सोकर उठने के बाद अपराह्न में उनका गोष्ठी-विहार प्रसाधन किया जाता था। उपलेपन, गन्धमाल्य और उत्तरीय धारण कर वह गोष्ठी के लिए चले जाते। वहाँ से लौटने पर सायंकाल की संध्या और उपासना करते थे। इसके बाद अन्तःपुर में आयोजित संगीत, नाट्य आयोजन में सम्मिलित होते। वहाँ से लौटकर रात्रि-भोजन करने के बाद शायनागार में चले जाते थे।

शयनकक्ष में महाराज उदयन की शय्या के पास ही एक प्रति शय्या बिछी रहती थी। जिसमें महारानी वासवदत्ता जब कभी आकर बैठा करती थीं। शय्या पर लेटे-लेटे महाराज अपने मंत्रियों, अमात्यों, सेनापति आदि राज्य के आठों अंगों से क्रमशः भेंटकर दिन भर के शासन का समाचार ज्ञात करते और दूसरे दिन के लिए किये जाने वाले कार्यों पर विचार करते थे। सबसे अन्त में तापस, वैदेहक आदि सभी प्रकार के गुप्तचरों से राज्य भर के गुप्त समाचारों को सुनकर उन्हें उचित आदेश देते। इसके बाद चित्रफलक पर तूलिका से चित्रांकित करते, या काव्य-रचना करते अथवा वीणा बजाया करते थे। उनके इस अन्तिम कार्य-क्रम में महारानी वासवदत्ता तथा अन्य रानियाँ भी भाग लिया करती थीं। यह कार्यक्रम मध्यरात्रि से पूर्व समाप्त कर महाराज देवाराधना करते हुए सुखपूर्वक सो जाते थे।

महाराज उदयन की दिनचर्य्या में केवल विलासिता ही नहीं थी, बल्कि अप्रमत्त होकर शासन करने की धुन और पराक्रम से शासन की रक्षा करने की चिन्ता भी रहती थी।

# महारानी वासवदत्ता की दिनचर्य्या

दो हजार वर्ष पहले का भारतीय लोकजीवन योग और भोग दोनों को अपने दैनिक जीवन में सम्मान दिया करता था। उस समय के राजा, रईस अपनी सम्पत्ति का उपभोग केवल निजी विलास में ही न करके शिल्पियों, कलाकारों, निर्धनों और गुणियों में भी उसका वितरण किया करते थे। वे अपनी निजी सम्पत्ति के कृपणभोक्ता न थे।

कौशाम्बी नरेश महाराज उदयन को विधाता ने जैसा रूप-गुण सौदर्न्य और वैभव दिया था, वैसी ही उन्हें रानी वासवदत्ता भी मिली थीं। वासवदत्ता अनिन्द्य सुन्दरी तो थीं ही साथ ही उनमें सदाशयता, उदारता और गुणग्राहिता भी थी। उनकी दिनचर्य्या में जहाँ कलात्मक विलास है वहीं नारी सुलभ समस्त लौकिक विशेषताएँ भी हैं।

प्राचीन कथा साहित्य, नाट्य साहित्य में भारतेश्वरी वासवदत्ता की दिनचर्य्या का जो उल्लेख हुआ है—वह इस प्रकार है—

'रानी वासवदत्ता प्रातः ब्राह्ममुहूर्त में निद्रा त्याग करतीं थीं। अन्तः-पुर की सेविकायें ऋतु के अनुसार औषधियों से शोधित जल द्वारा उनका मुख-प्रक्षालन करतीं। दूसरी सेविका दाँत साफ करने के लिए दातून लिए तैयार रहती। यह दातून एक सप्ताह पूर्व औषधियों द्वारा तैयार कर ली जाती थी। हर्रे का चूर्ण गोमूत्र में मिला कर उसी में मौलिश्री की दातून छोड़ दी जाती थी। पश्चात् उसे निकाल कर दालचीनी, अजवायन, तेजपात, मिर्च (काली) इलायची और मधु से सुगन्धित जल में डुबाया जाता था। यह कार्य जो सेविका किया करती थी उसे सुगन्ध-कारिणी, कहा जाता था। प्रति दिन ऐसी दातून करने से रानी वासव-

दत्ता का मुँह सुगन्धित और देदीप्त रहता था। वाणी सुकोमल और सरस रहती थी।

दातून करने के बाद अनुलेपन करनेवाली दासी अगर, तगर, केशर, कस्तूरी, चन्दन और दूध से मिश्रित अनुलेपन, अनुलेपनपात्र में लेकर उपस्थित होती थी। महारानी के समस्त शरीर में अनुलेपन ( उबटन ) हो जाने के बाद दूसरी दासी द्वारा उनका केश-संस्कार किया जाता था। ग्रीष्मकाल में सुगन्धित तैल द्रव्यों द्वारा प्रस्तुत 'कषाय-कल्क' से, शीतकाल में 'धूपित सुगन्ध' से, वार्षाकाल में 'पुष्पावतंस' या फूलों के गुच्छे से, शरत्काल में 'नवमालती माला' से और वसन्त काल में 'पुष्प सौरभ' से केश संस्कार किया जाता था। ऋतु के अनुसार रक्त अशोक, नवमल्लिका, कर्णिकार आदि पुष्पों के स्तवकों से उनकी कबरी ( जूड़ा ) सजायी जाती थी। सुगन्ध से धूपित केश कुछ देर तक सूखने के बाद सुगन्धित द्रव्य से परिपूत जल द्वारा उन्हें स्नान कराया जाता था। फिर प्रसाधिकाओं द्वारा उनका सर्वोच्च श्रृङ्गार किया जाता था। केशों को बड़े यत्न से कुञ्चित बनाया जाता था। सुगन्धि से वासित नवीन वस्त्र पहनाये जाते थे। सिक्थक और अलक्तक से अधर, नाखून आदि रँगे जाने के बाद सोने की समतल पट्टी का बना हुआ दर्पण उन्हें दिखाया जाता था। दर्पण में अपना मुख देखकर सन्तुष्ट महारानी अपने इष्टदेव और पतिदेव का अभिवादन करतीं। इसके बाद प्रातराश ( जलपान ) करतीं। सुपारी, चूना, कत्था, आदि उचित मात्रा में डाल कर मुख छबि बढ़ाने वाले, वाणी को मधुर बनाने वाले अनेक सुगन्ध द्रव्यों से वासित ताम्बूल वीटक उन्हें दिया जाता। उस समय महारानी वासवदत्ता की शोभा अपूर्व बन जाती थी, जब वे बारीक हल्की साड़ी पहन कर ताम्बूल द्युति से जगमगाते हुए ओंठों से मन्द-मन्द मुस्काती हुई मरकतमणि निर्मित भवन में स्वर्ण-पीठिका पर बैठती थीं।

मध्याह्न में महाराज उदयन के साथ भोजन करतीं। भोजन में भक्ष्य,

भोज्य, लेह्य, चोष्य, पेय और गेहूँ, जौ, दाल, घी, मांस, शाक, दूध आदि सभी प्रकार की वस्तुएँ रहती थीं। अन्त में मिठाई खायी जाती थी। फिर ताम्बूल खाकर महाराज के साथ वह दिवाशय्या के लिए शयनागार जाती थीं। सम्वाहिका धीरे-धीरे उनके पैर दबा कर जब चली जाती तो कुछ देर तक शयनागार के शुक-सारिका को माध्यम बना कर महाराज और महारानी आपस में विनोद करते। कभी-कभी इस विनोद में महाराज और महारानी अपने निकटवर्ती पीठमर्द, विट्, विदूषक और कंचुकी को भी बुला लिया करते थे। विनोद के बाद सो जाया करते थे। जगने पर गोष्ठी बिहार की तैयारियाँ शुरू हो जाती थीं। अंगराग उपलेपन, माल्यगन्ध आदि से प्रसाधन किये जाते। शाम को सान्ध्यकृत्यों से निपट कर संगीत अनुष्ठान के आयोजन में भाग लेने जाती थीं। वहाँ नृत्य, गान, अभिनय आदि देख कर महाराज के साथ निजी वार्ता करतीं। दिन भर के कार्यों की आलोचना करने के बाद सो जाती थीं।

इस प्रकार महारानी वासवदत्ता की दिनचर्य्या सुकुमार कलाओं से आच्छन्न थी। उनके दैनिक जीवन में कहीं से भी नीरसता और उदासीनता नहीं झलकती थी।

# कौशाम्बी के अन्तःपुर का कला-विलास

यह नहीं कहा जा सकता, कि कौशाम्बी का अन्तःपुर चौंसठकलाओं का आश्रयदाता था या चौंसठ कलाओं पर ही कौशाम्बी का अन्तःपुर आश्रित और निर्भर था। दोनों एक दूसरे के पूरक बने हुए नितनूतन श्री-समृद्धि की सृष्टि कर रहे थे। यमुना-पुलिन पर स्थित अन्तःपुर कालिन्दी की चटुल-तरंगों से अठखेलियाँ करता हुआ उदयन और वासवदत्ता के मानसिक आन्दोलनों का प्रतिनिधित्व कर रहा था। अन्तःपुर की उत्तुङ्ग धवल चन्द्रशाला की परछाईं रात में यमुना के असित जल पर पड़ कर मुसल्लम चादर बनी हुई सुहावनी लगती थी।

अन्तःपुर के भीतरी प्रकोष्ठ में जहाँ अन्तःपुरिकाएँ निवास करती थीं--तुंग गवाक्ष बने हुए थे, जहाँ पर बैठकर रानियाँ यमुना की लोललहरों की कल्लोल देखकर प्रसन्न होतीं और कभी-कभी स्पर्द्धा और प्रतिद्वन्द्विता से भी अभिभूत हो जाया करती थीं। राज प्रासाद के नीचे करधनी की भाँति स्थित यमुना की चटुल लहरें देखने के लिए अन्तःपुर की सुन्दरियाँ अन्तःपुर के जिस गवाक्ष में बैठतीं, उसी की अंकलक्ष्मी बन जाया करती थीं। अन्तःपुर के द्वार में लगे हुए बड़े-बड़े फाटक मणि-मरकत के बने हुए थे, स्वर्ण-मुक्ताओं के तोरणों से आवेष्ठित लास्य मुद्रा में सुन्दर सालभंजिकाएँ स्थित थीं। जलपूर्ण स्वर्ण कलशों में मङ्गल द्रव्यों और मंगल-रेखाओं से परिवृत द्वार के दोनों शिरों पर नित्य रखे जाते थे। द्वार की नागदन्तिकाओं में मालती पुष्प की मनोहर मालाएँ भंगिमापूर्ण लटकायी जाती थीं अन्तःपुर की भूमिका सुगन्धित पुष्पों एवं रंगीन अक्षतों से सजायी जाती थी। वेदिका नित्य गाय के गोबर से लीपी जाती थी। उस पर स्फटिक—मंगल-कलश रखा जाता था, जिसमें

जल भर दिया जाता था और ऊपर हरित आम्रपल्लव से आच्छादित कर उसे ललाम बना दिया जाता था। अन्तःपुर के प्रत्येक गृह के द्वार पर मोतियों की झालरें लटकायी जाती थीं और प्रत्येक गृह शिखर पर सौभाग्य पताकाएँ फहराया करती थीं। गृहवेदिका के पीछे लगे हुए विशाल कपाटों से प्रासाद के ऊपर जाने वाली सोपान पंक्तियाँ दिखायी पड़ती थीं। अन्तःपुर में अन्तःचतुश्शाल बनी हुई थीं, जहाँ पर विदूषक वसन्तक बैठकर पक्वान्न खाया करता था।

अन्तःपुर से लगी हुई एक वृक्ष-वाटिका थी, जिसमें विविध प्रकार के बारहों मास फलने-फूलने वाले वृक्ष, पुष्प-लाताएँ और अश्मक आरोपित थे। इस वाटिका के सुगन्धित पुष्पों से ही अन्तःपुर और अन्तःपुरिकाओं का प्रतिदिन शृंगार हुआ करता था। पुष्प वाटिका के किनारे पर अशोक, अरिष्ट, पुन्नाग, शिरीष आदि बड़े-बड़े छायादार वृक्ष लगे हुए थे। वाटिका में मणिमरकत के सोपानों से सुसज्जित दीर्घिका थी। जिसमें तैरते हुए राजहँसों के कन्धों से ढकेली गयीं लहरियाँ कल्हारों से टकराती थीं। हँस के अतिरिक्त कारण्डव, क्रौञ्च और चक्रवाक गण भी वहाँ कलरव विनोद किया करते थे। दीर्घिका के बीच में समुद्रगृह बना हुआ था जिसमें अन्तःसलिल अनवरत संचरित हुआ करता था। वाटिका में जगह-जगह लताओं के मण्डप बने हुए थे, जहाँ पर अन्तःपुर की सुन्दरियाँ मनोविनोद किया करती थीं। सघन छाया में बैठने के लिए स्थण्डिलपीठिकाएँ निर्मित थीं और प्रेङ्खादोला लगे हुए थे, जिनमें सुकुमारी सुन्दरियाँ झूला झूलती थीं। पुष्प वाटिका में बने हुए भवनों में भवन दीर्घिकाएँ भी रहती थीं, जिनके पार्श्व भाग में मणियों से बना हुआ क्रीड़ा पर्वत बना रहता था। वाटिका के मध्यभाग में रक्त-पुष्प अशोक और वकुल के वृक्ष थे, जो प्रिया के पदाघात और मुखद्रव की प्रतीक्षा में खड़े रहते थे। अन्तःपुर की सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी के पदाघात से ही अशोक फूला करते थे। अन्तःपुर की वाटिका में

सदा वसन्त की बहार रहा करती थी, मदविह्वला कोकिलाएँ सहकार-शाखाओं पर कूका करती थीं। मदमत्त मयूर नर्तन किया करते थे, पुष्प-स्तवकों पर भ्रमर गुञ्जार करते थे। और कुलवधुएँ कहीं लता मण्डपों में बैठ कर, कहीं अन्तःपुर की अट्टालिकाओं से पुष्प-वाटिका का आनन्द आत्म विभोर होकर लिया करती थीं। अन्तःपुर की परिचारिकाएँ लवलिका केतकी के पुष्प पराग से लवली के आलबालों को सजाया करती थीं, कृत्रिम मृणालिकाओं के यन्त्र चक्रवाकों के कुंकुम-रेणु फेंका करती थीं। कर्पूर पल्लव के रस से गन्ध-पात्रों को सुवासित किया करती थीं। तमाल वीथिका के अन्धकार में मणियों के प्रदीप सजाया करती थीं। इस प्रकार अन्तःपुर की सरस बधुओं के मनोविनोद के लिए परिचारि-काएँ अपनी रसिक कलाओं के अनेक प्रदर्शन नित्य नये ढङ्ग से किया करती थीं। तात्पर्य यह कि अन्तःपुर का भीतरी प्रकोष्ठ सुकुमार कलाओं का आश्रय था।

कौशाम्बी के अन्तःपुर के विशाल प्रासाद के वहिः प्रकोष्ठ में महा-राज उदयन रहा करते थे। उस प्रकोष्ठ का शयन कक्ष देख कर यह कहा जा सकता था, कि राज्य का सुख गृह है, गृह का सुख कान्ता है और कान्ता का सुख मङ्गल जनक कोमल शय्या है। वीणा और चित्रफलक महाराज उदयन की दो प्रिय वस्तुएँ थीं, उनकी मधुर-भाषिणी रानियाँ वीणा से कम प्रिय न थीं। महाराज उदयन की कुंजरमोहिनी वीणा और महारानी वासवदत्ता की घोषवती वीणा जिस समय एक साथ बजा करती थीं, उस समय उनकी मनोमोहक ध्वनि से अन्तःपुर मुखरित हो उठता। कौशाम्बी पुलक उठती, यमुना हिलोरें लेने लगती, इतना ही नहीं स्वर्ग लोक से अप्सराएँ उतर कर कौशाम्बी के अन्तःपुर में नाचने लगतीं। अन्तःपुर की दीवारें स्फटिक मणि के समान स्वच्छ और दर्पण के समान चमकीली थीं। सूक्ष्म रेखा विशारद, विद्युत् निर्माण में कुशल एवं कर्ण पूरण कला में दक्ष शिल्पियों ने उनमें जो भित्ति चित्र अंकित

किए थे, उनमें नवों रस साकार और सजीव-से जान पड़ते थे। चित्रकला को अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष देने वाली समझ कर उसकी साधना प्रमुख रूप से अन्तःपुर में की जाती थी। अन्तःपुर की प्रत्येक कुलवधू और सुन्दरी के पास चित्र फलक और समुद्ग्रक रहा करता था। महारानी वासवदत्ता विद्ध, अविद्ध, रस चित्र और धूलि चित्र ये चारों प्रकार के चित्रकर्म में बहुत ही कुशल थीं।

अन्तःपुर वासिनी सभी सुन्दरियाँ कला प्रवीण थीं। वे ललित कलाओं की साधना के अतिरिक्त अक्षक्रीड़ा, पाशक्रीड़ा और चतुरङ्ग क्रीड़ा में भी अनुराग रखती थीं। कुमारियों को छोड़ कर कुलवधुओं के शिर में अवगुंठन रहता था। वे सब मिल कर आपस में शास्त्र चर्चा, काव्य चर्चा और साहित्यिक मनोविनोद भी किया करती थीं। विवाह और व्यसन इन दो अवसरों को छोड़ कर कुलवधुओं के दर्शन दुर्लभ थे। अन्तःपुर के देव मन्दिरों में होने वाले पूजा समारोह में सभी कुलांगनाएँ उल्लास से भाग लेती थीं। नाच-गान के विराट् आयोजन हुआ करते थे। अन्तःपुर की रंगशाला में नाट्यकला का प्रदर्शन होता था। स्त्रियाँ ही नाटक लिखती थीं और फिर वे ही उसे खेला करती थीं। कौशाम्बी के अन्तःपुर की रंगशाला के जिस भाग में अभिनय किया जाता था, उसे रंगभूमि कहा जाता था, जहाँ पर नेपथ्य ( पर्दे ) के पीछे अभिनय हुआ करता था। दूसरे भाग में दर्शकों के बैठने का स्थान था। जिसे प्रेक्षागार कहते थे। पारिवारिक उत्सवों के अवसर पर अन्तःपुर वीणा, वेणु, मुरज और पगनूपुरों की झनकार से तथा कोकिल कंठी सरस कुलांगनाओं के मंगल-गानों से और विविध नृत्यों के पादविक्षेप से गुंजरित रहता था। पौर युवतियों के लगातार आने-जाने पर मरकत मणि जटित प्राङ्गण उनके महावर लगे हुए पैरों की छाया से ऐसा जान पड़ता था मानों सरोवर में रक्त कमल खिले हैं।

कौशाम्बी की सुकुमार कलाओं में सब की क्रीड़ाएँ विलास प्रधान ही नहीं थीं, बल्कि उनमें अधिकांश बुद्धिमूलक, कुछ मनोरंजन प्रधान

और कुछ तो ऐसी थीं जो दैनिक प्रयोजनों की पूरक कही जा सकती है। अन्तःपुर की परिचारिकाएँ अन्तःपुरवासिनी रानियों के सौन्दर्य-विलास के लिये ऋतु के अनुसार जो शृंगार किया करती थीं, उसमें कला की साधना रहती थी। उस कला साधना में शारीरिक सौन्दर्य के साथ ही साहित्यिक अभिरुचि एवं योग्यता का निदर्शन मिलता है। जैसे महारानी वासवदत्ता की प्रधान सखी कांचन माला ने उनके सुहाग-शायन के दिन विलासिनी कलाओं में ही साहित्यिक सौन्दर्य निहित कर दिया था। रानी वासवदत्ता के कपोलों के प्रान्तर भागों में चन्दन-पत्र लेखा, कपोलों के बीचोबीच कुसुम-वाणों से लगे हुए घावों पर पट्टी बँधी हुई-सी सित-रेखाएँ, उनके कमल से भी अधिक कोमल पदतल पर तिर्यक् अलक्तक-रेखाएँ और महाराज उदयन की स्थण्डिल-पीठिकाओं पर कुसुमास्तरण आदि कला-कृतियाँ साहित्यिक अभिरुचि की परिचायिका हैं। कौशाम्बी के अन्तःपुर में वास्तु कला, धातु कला, रत्नपरीक्षा, मणियों, शिलाखण्डों का रंगना, वृक्ष-वाटिका के वृक्षों, पुष्पों और लताओं को दीर्घायु बनाने तथा उनमें तरह-तरह के फल-पुष्पों को उत्पन्न करना, आदि उपयोगी कलाओं का भी पूरा समादर और उपयोग होता था। अन्तःपुर के एक भाग में तित्तिर, बटेर, शुक, सारिका, भेड़े और मुर्गे आदि पक्षी तथा पशु भी पाले हुए थे। गृहवापिका में चक्रवाक, हंस, कारण्डव, सारस आदि तथा वाटिका में कोकिल, कपोत, मयूर आदि पक्षी पाले जाते थे जो केवल मनोविनोद के साधन थे।

मानसिक और बौद्धिक विकास का ध्यान रखकर गोष्ठी-विहारों और नाटकों का आयोजन होता था। कौशाम्बी की राजसभा और अन्तःपुर में उन्हीं आदमियों का प्रवेश होने पाता था जो कला मर्मज्ञ होते थे। ऐसे कलाकार गीत, वाद्य, नृत्य, आलेख्य, विशेषकच्छेद्य, तण्डुलकुसुमावलि विकार, पुष्पास्तरण, दशनवसनाङ्गराग, मणिभूमि का कर्म, शयन रचना, उदकवाद्य, उदकघात, चित्रयोग, माल्यग्रथन विकल्प, आपीड़क प्रयोजन, नेपथ्य प्रयोग, कर्णपत्रभङ्ग, गन्धयुक्ति, भूषण प्रयोजन,

इन्द्रजाल प्रयोग, कौचुमारयोग, हस्तलाघव, विचित्रशाक यूष भक्ष्य विकार क्रिया, विभिन्न पेय प्रयोजन, सूचीवान कर्म, सूत्रक्रीड़ा, वीणा डमरूवाद्य, प्रहेलिका, प्रतिमाला, दुर्वाचक योग, पुस्तक वाचन, नाटक आख्यायिका दर्शन, कव्य समस्या पूर्ति, पट्टिकावेत्रवान विकल्प, तक्षकर्म, तक्षण, वास्तुविद्या, रूप्यरत्न परीक्षा, धातुवाद, मणि राग आकर ज्ञान, वृक्षायुर्वेद योग, मेषपकुक्कुटलावक युद्ध विधि, शुक सारिका प्रलापन, संवाहन, केशमर्दन कौशल, अक्षर मुष्टिका कथन, म्लेच्छित विकल्प, देश भाषा विज्ञान, पुष्प शकटिका, निमित्तज्ञान, यन्त्रमातृका, धारणमातृका सम्पाठ्यम्, मानसी, काव्य क्रिया, अभिधानकोश छन्दो विज्ञान, क्रियाकल्प, ललितयोग, वस्त्रगोपन द्यूतविशेष, आकर्षक्रीड़ा, बालक्रीड़ा, विनय कौशल और व्यायामकौशल इन कलाओं में अथवा किसी एक कला में अवश्य ही दक्षता प्राप्त होते थे। कौशाम्बी के अन्तःपुर की इन कलाओं में एक तिहाई कलाएँ मानसिक और बौद्धिक शक्ति को बढ़ाने वाली थीं, जिन्हें विशुद्ध साहित्यक कहा जा सकता है।

कौशाम्बी के अन्तःपुर की रङ्गशाला कला की प्रतिमूर्ति थी। उस रंगशाला के स्तम्भ रत्नजटित थे, पुष्पप्रकरों से सुशोभित अनेक वितान बने हुए थे। मध्य भाग में राजसिंहान रखा रहता था, जिसमें कौशाम्बी-नरेश महाराज उदयन बैठा करते थे। उनके पीछे रूप-यौवन और अलंकारों से सज्जित चारु-चामर धारिणी स्त्रियाँ धीरे-धीरे चँवर डुलाया करती थीं। बाईं ओर अन्तःपुर की रानियाँ, दाहनी ओर प्रधान आमात्य, सेनापति आदि बैठते थे। इनके पीछे कोशाध्यक्ष तथा अन्य राजकीय विभागों के अध्यक्षों के लिए स्थान नियत थे। इनके ही निकट वेद-वेदाङ्ग पारंगत विद्वान् बैठा करते थे। इन्हीं के समीप अमात्यमण्डल के अन्य सदस्य बैठते थे। बाईं ओर महारानियों के निकट अन्तःपुर वासिनी परिचारिकाएँ बैठती थीं। अनुशासन और नियंत्रण के लिए मुख्य-मुख्य स्थानों में प्रभावशाली वेत्रधर खड़े रहते थे। महाराज के सामने कुछ बायीं ओर हट कर कलाकारों के लिए स्थान नियत था। गैलरियों में

विशिष्ट अतिथि बैठाए जाते थे और सामान्य दर्शक वेदिका में बैठाए जाते थे।

इसी प्रकार साहित्यिक चर्चाओं और काव्य शास्त्र विनोद के लिए एक अलग सभा मण्डप था, जिसमें सोलह खम्भे, चार द्वार और अट्टालिकाएँ थीं जहाँ पर शास्त्रज्ञ विद्वान्, कवि, भाट, गायक, हास्य कवि, इतिहासज्ञ और पुराणज्ञ—ये सात प्रकार के कलाविद् उस सभा के अंग माने जाते थे। अन्तःपुर की रानियाँ और कुमारियाँ भी काव्यगोष्ठी में सम्मिलित होती थीं, वे सुभाषितों, श्लोकों को समझती ही नहीं थीं बल्कि उनकी रचना भी किया करती थीं। रनिवास में काव्य ग्रन्थ कुमारियाँ ही लिखा करती थीं। वे काव्य कला, चित्रकला, संगीत आदि ललित कला, में पूर्ण निपुण हुआ करती थीं।

काव्य गोष्ठी के सभा मण्डप के बीचोबीच सरस्वती की प्रतिमा रखी जाती थी, उसी के समीप कुछ नीचाई पर महाराज उदयन का सिंहासन रहता था। उनके उत्तर की ओर संस्कृत भाषा के कवि बैठते थे। संस्कृत कवियों के पीछे विभिन्न शास्त्रों के विशेषज्ञ पंडित बैठते थे। पूर्व की ओर प्राकृत भाषा के कवि और उनके पीछे नट, नर्तक, कुशीलव आदि बैठते थे। पश्चिम की ओर पाली भाषाओं के कवि बैठते थे और उनके पीछे चित्रकार, लेपकार, मणिकार आदि कलाकार बैठाए जाते थे। दक्षिण की ओर प्रादेशिक भाषाओं के कवि बैठते थे, उनके पीछे मसखरे, जादूगर, लोक नर्तक, भाँड़ आदि बैठते थे।

सर्व प्रथम कवियों का परिचय फिर उनका सम्मान किया जाता था। उनको समस्याएँ देकर अथवा प्रहेलिका, बिन्दुमती आदि से उनके बुद्धि-कौशल की परीक्षा भी ली जाती थी। कवियों में प्रतिस्पर्द्धा की भावना भी पैदा हो जाती थी, उनमें हास-परिहास भी होता था। गम्भीर विषयों पर शास्त्रार्थ छिड़ जाता था। पौराणिकों, कथाकारों का उचित सम्मान किया जाता था। कथाकारों को तत्काल कोई घटना बता दी जाती थी अर वे

सुन्दर पद्यबद्ध कथा रचकर उसी समय सुनाया करते थे। परदों के अन्दर बैठी हुई रानियाँ, राजकुमारियाँ रस लिया करती थीं।

अन्तःपुर में रानियाँ, राजकुमारियाँ और परिचारिकाएँ मिलकर अलग गोष्ठी रचाती थीं। उसमें राजधानी की अन्य नागरिक स्त्रियाँ भी सम्मिलित हुआ करती थीं। इस प्रकार की गोष्ठी में अनेक प्रकार की काव्य-समस्याएँ, मानसी क्रिया, पुस्तक वाचन, दुर्वाचक योग, देश भाषा विज्ञान, आख्यान, छन्द अलंकार, रसालाप और आलोचनाएँ हुआ करती थीं। चित्रगत चमत्कार को अन्तःपुरिकाएँ बहुत महत्त्व देती थीं। चित्रफलकों पर चित्र बनाए जाते थे, दीवालों पर चित्राँकित किये जाते थे।

अन्तःपुर की काव्य गोष्ठी में जिस समय संगीत और काव्य की स्वरलहरी कोकिल-कण्ठों से गूँजती उस समय भवन दीर्घिका के कलहंस कोलाहल करने लग जाते थे, मयूर नाचने लगते, जिस समय वसन्त ऋतु में आम्र मंजरी को हाथ में लेकर अन्तःपुर की युवतियाँ द्विपदी खण्ड का गान करती हुई नाचती थीं, उस समय उनकी श्रुति माधुरी से कोकिल उन्मत्त होकर कूजने लगती थी, पग-नूपुरों की झनकार सुनकर केकी पुलक उठती और मन्दगति से नाचने लगती। क्रौञ्च अपने कर्कश निनाद से अन्तःपुर की वाटिका को कँपा देता था। उद्यान के पुष्प मुस्कराने लग जाते और मलयानिल मानों युवतियों के श्वास से पैदा होकर बहने लग जाता था, चकोर उनकी मुख चन्द्रिका का पान करने के लिए मद विह्वल हो उठता तब मुग्धा नायिकाओं के हृदय में अनजाने स्पन्दन उत्पन्न हो जाता था। गोष्ठी को कुक्कुट अपनी ध्वनि से उत्तेजित बना देता तो भोला राजहंस उड़कर उनका सन्देश ले जाने के लिए तैयार हो जाता। इस प्रकार अन्तःपुर के पक्षी भी उस गोष्ठी में विनोद के सहायक बन जाया करते थे।

कौशाम्बी का अन्तःपुर मनोविनोदों, क्रीड़ाओं, उत्सवों और गोष्ठियों के लिए समस्त वत्सदेश का प्रतिनिधित्व किया करता था। उसका दृष्टि-कोण उदार था, उत्सवों और गोष्ठियों में सामान्य जनता को भी मानसिक,

बौद्धिक और सामाजिक विकास के लिए पूरा अवकाश दिया जाता था।

कौशाम्बी के कला-विलासों में पौर-जनपदों का प्रमुख भाग रहा करता था। ऐसे कलात्मक विनोदों में 'समाज' नाम का उत्सव प्रमुख था। यह उत्सव वर्ष भर में एक दिन पंचमी को सामूहिक रूप से मनाया जाता था। अन्तःपुर, राजभवन से लेकर राज्य भर की झोंपड़ियों तक में निवास करने वाली जनता इस हर्षोल्लासमय उत्सव में सम्मिलित हुआ करती थीं। यह उत्सव सरस्वती-पूजन से प्रारम्भ हुआ करता था, धार्मिक भावनाओं की छाया में राष्ट्रीयता का विकास ही इसका मुख्य उद्देश्य था। सामान्य जन को अपने महाराजा से मिलने, मनोविनोद करने तथा उनके साथ हिल-मिल कर बैठने, खाने-पीने का यही एक अवसर था। राज्य के उच्चकोटि के कलाकारों के अतिरिक्त दूसरे देशों के भी प्रतिष्ठित और ख्यात कलाकार इस उत्सव में आमन्त्रित किये जाते थे।

प्रातःकाल से ही सरस्वती आयतन की ओर जनता जाने लगती थी। हर श्रेणी का हर व्यक्ति अपनी कला का प्रदर्शन किया करता था। चौसठ कलाओं का एकत्र प्रदर्शन समाज उत्सव ही में हुआ करता था। पुरुषों के अतिरिक्त नगर-वधुएँ और कुमारिकाएँ भी इस उत्सव में भाग लिया करती थीं। उनकी गोष्ठियों का अलग और उनकी मर्यादा के अनुकूल प्रबन्ध किया जाता था।

इस राष्ट्रीय उत्सव का सारा प्रबन्ध राज्य की ओर से हुआ करता था। यातायात, निवास, आवास, अन्न, वस्त्र, उत्सव, विनोद आदि सब कुछ का भार राज्य पर ही रहता था। उत्सव का सारा दायित्व स्वयं महाराज पर रहता था। वे न केवल मनोविनोद के लिए ही समाज उत्सव क्षेत्र का निरीक्षण करते थे, बल्कि अपने शासन प्रबन्ध और अपनी प्रजा की शारीरिक, मानसिक और सामाजिक दशाओं का भी अध्ययन किया करते थे। इस उत्सव द्वारा प्रजा की समस्त अन्तर्बाह्य स्थिति का परिचय महाराज उदयन को और उनके निपुण अमात्यमण्डल को हो जाता था।

कौशाम्बी में प्रति वर्ष लगने वाला यह मेला कई दिनों तक रहता था, वैदिक काल में इस मेले का नाम 'समन' मेला था, बौद्ध काल में इसे समाज कहा जाने लगा, आगे चलकर यही मेला कुम्भ पर्व में परिणत होकर स्थायी बना।

कौशाम्बी का अन्तःपुर सदैव यौवन और धन से आपूर्य रहता था। दुःख नाम की वस्तु की वहाँ छाया भी नहीं पड़ती थी विपुल धन, उन्नत यौवन दोनों का उपभोग वहाँ पर मुक्त हस्त से किया जाता था। कौशाम्बी नरेश महाराज उदयन अपनी अतुल सम्पत्ति का उपयोग दान, भोग, शक्ति और सम्मान इन चार विषयों पर किया करते थे। उनकी विलासिता केवल शारीरिक सुख या मन-बहलाव के लिए नहीं थी, बल्कि उसमें कला की साधना और कलाकारों का सम्मान, पोषण और प्रोत्साहन भी रहता था। उनकी दिनचर्या, रात्रिचर्या में कला ही कला अनुप्राणित थी। उनके समस्त कार्य, उनका समस्त विधान, उनका समस्त जीवन कलामय था।

वे अपने इन दिव्य गुणों के कारण अपनी प्रजा के, लोक समाज के सम्मान भाजन थे। उनके इस विलासमय जीवन में धर्म, अध्यात्म, और तप का पूर्ण प्रभुत्व था। उनके विचारों पर विवेक का प्रभाव रहता था। असामाजिक, अधार्मिक और अनियंत्रित विचार उनके मन को स्पर्श भी नहीं कर सकते थे। वे योग्य शासक होने के साथ ही सच्चे अर्थ में सहृदय मानव थे। कला की उपासना और साधना उन्हें लोरियों की भाँति सुकोमल और सुरुचिपूर्ण बनाये हुए थी; उनकी वाणी में दुलार के कमल खिले रहते थे। बुद्धि में विवेक की छाया रहती थी। उनका अन्तःपुर उनके सरस हृदय, समरस जीवन का प्रतीक था।

कौशाम्बी के अन्तःपुर में कला का लक्ष्य कला नहीं था, बल्कि वह परमतत्त्व की प्राप्ति का साधन माना जाता था। यहाँ के कला विलास में शारीरिक अनुरंजन के साथ ही मानसिक और बौद्धिक विकास का भी ध्यान रखा जाता था।

## अच्छी पुस्तकें अच्छे व्यक्तित्व का निर्माण करती हैं

## और

हम आपको आपके व्यक्तित्व के निर्माण-कार्य में यथाशक्ति सहायता प्रदान करने के लिए उत्सुक हैं। यदि आपका नाम अन्य हजारों ग्राहकों की भाँति हमारी उस सूची में लिखा हुआ नहीं है, जिन्हें हम बराबर अपने नये प्रकाशनों की सूचना देते रहते हैं तो आज ही एक कार्ड अपने नाम पते सहित हमारे पास लिख भेजें। एक बार आपका कार्ड मिल जाने पर हम आपको नियमित रूप से विविध प्रकार के मनोरंजन साहित्य के—जिनमें उपन्यास (जासूसी और सामाजिक), कहानी संग्रह तथा अन्य साहित्य भी सम्मिलित हैं—नये प्रकाशनों की खबरें भेजते रहेंगे। अपने यहाँ के किसी भी पुस्तक-विक्रेता से हमारी पुस्तकें माँगें। अगर कोई दिक्कत हो तो सीधे हमें लिखें।

## एक और परामर्श

(१) आप आजकल के बढ़े हुए डाकखर्च से परिचित ही होंगे। स्थिति यह है कि एक रुपये की पुस्तक डाक द्वारा माँगने पर लगभग एक रुपया ही व्यय पड़ जाता है। इसलिए अपने यहाँ के पुस्तक-विक्रेता से अनुरोध कीजिये कि वह आपकी रुचि की पुस्तकें हमसे मँगाये। हम पुस्तक-विक्रेता को भी सुविधाएँ देंगे और आपकी बचत में भी सहायक होंगे।

(२) यदि कोई पुस्तक-विक्रेता आपके अनुरोध पर विचार न करे तो आप उसका नाम-पता हमें लिख भेजिये। आपकी सुविधा के लिए हम उनसे आग्रह करेंगे कि वे आप द्वारा माँगी गयी पुस्तकें अपने यहाँ रखें।

### किताब महल, प्रकाशक, इलाहाबाद
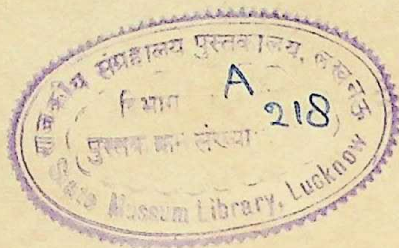
अनेक रंगों में समाया हुआ मेरा जीवन इन्द्र धनुषी जीवन है । वर्तमान से मजबूर होकर भूत और भविष्य को भूल जाता हूँ । शक्ति का सौन्दर्य और सेवा का सौरभ दोनों जहाँ पर एक साथ मिलते हैं, वहीं मैं जीवन की पूर्णता मानता हूँ । बुद्धि दिल खोलकर लुटाने की चीज है, और ईमान हिफाजत से छिपाए रखने की चीज है ऐसा समझकर आनन्द की लहरों में मस्ती से तैर रहा हूँ, लेकिन कभी-कभी संशय का काँटा मन में चुभता है—

लोग मुझे गलत क्यों समझने लगते हैं ।

बाहों में तूफान समेटे हुए, विपत्तियों की छाती पर पैर रखते हुए जिन्दगी के हर मोड़ को प्रेरणा समझते हुए और अभिशापों को वरदान समझते हुए मैंने अड़तीस वर्ष बिता दिए हैं । कौशाम्बी के निकट जन्मभूमि है, शायद इसीलिए लहरों से मेरा स्वाभाविक प्रेम है । मानव को मानव समझने में पूरा प्रगतिशील होकर भी प्रगतिशीलों द्वारा प्रतिगामी समझा जाता हूँ, शायद इसलिए कि भारतीय संस्कृति, साहित्य और भगवान् के प्रति आस्था रखता हूँ । पेट में कीचड़ पालकर मुख से वचन के कमल खिलाना मैं नहीं जानता, शायद इसीलिए खुशामद पसन्द संसार की आँखों की किरकिरी बन जाता हूँ । मैं स्वभावतः स्वावलम्बी हूँ, किन्तु मेरे कोई प्रयत्न अब तक स्वावलम्बी न बन सके । शेली, शैक्सपियर, एजरापाउण्ड, मार्क्स, गोर्की आदि के साहित्य को चुराने की मुझमें क्षमता नहीं है, इसलिए मैं साहित्यिक नहीं माना जाता हूँ । गंगाजी जाकर गंगादास और जमना जी जाकर जमनादास बनने की प्रवृत्ति मुझमें नहीं है, इसलिए सफल पत्रकार और व्यवहार कुशल भी नहीं माना जाता हूँ ।

सच तो यह है, कि मैं अपने ढंग का अकेला हूँ । मेरी आदत मेरा साथ निभाती है, और मेरी किस्मत ही मेरी सरपरस्त है । यही मेरी जिन्दगी का फलसफा है और यही है—इन्तखाब ।